CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

146

सम्यग्दर्शनके निर्णयमें शुद्धात्मानुभूतिका संबंध

अपरनाम

अविरतसम्यक्त्वीके शुध्दात्मानुभूतिकी सप्रमाण सिध्दि

(चारो अनुयोग के आधारपर संकलन)

5358

संकलनकर्ता :

अध्यात्मयोगी श्री १०८ वीरसागर महाराज

वीरसंवत् २५०७ इ. स. १९८१

मूल्य – १ रुपया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशक :

श्री. नरेंद्रकुमार शास्त्री
महामहिमोपाध्याय,
दि. जैन युवक-युवति मंडळ,
शुक्रवार पेठ, सोलापूर

□

प्राप्ति-स्थान :

श्री जीवराज जैन ग्रंथमाला
फलटण गल्ली, सोलापूर.

□

मुद्रक :

कुमुदचंद्र फुलचंद शाह
मे. सन्मति मुद्रणालय,
१६६, शुक्रवार पेठ, सोलापूर-२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अविरत सम्यक्त्वीके शुद्धात्मानुभूतिकी सप्रमाण सिद्धि ।

शुद्धिपत्र

पृष्ठ नं.		पंक्ति नं.	अशुद्धि	शुद्धि
प्राक्कथन	३	१३	भेद ज्ञानी	भेदज्ञानी
,,	३	१५	गढ	गूढ
,,	३	१७	एकत्वे...नियमात् ।	" एकत्वे...नियमात् । "
ग्रंथ	२	११	अयाणंतोस	अयाणंतो स
,,	२	२३	तो चतुर्थ......	तो क्या चतुर्थ......
,,	२	२९	मिथ्यादृष्टचपेक्षा	मिथ्यादृष्टचपेक्षया
,,	३	२३	शुद्धात्मानुभूति) होनेसे	शुद्धात्मानुभूति होनेसे)
,,	४	१ से १५		टीपका अर्थ है ।
,,	४	२७	सम्यक् श्रद्धान...	सम्यक्श्रद्धान...
,,	५	२४	पर्यायपने द्वारा	पर्यायपनेके द्वारा
,,	५	२९	समालोचयति	समालोचयति ।
,,	६	२२	लोगप्पदीवरा ॥	लोगप्पदीवयरा ॥
,,	७	१९	तत्त्वानुशासनके	तत्त्वानुशासनके–
,,	७	२८	अप्रत्तगुणस्थान	अप्रमत्तगुणस्थान...
,,	८	११	धर्म्यं	धर्म्य
,,	९	१०	सासादानमिश्र	सासादनमिश्र
,,	९	१०	आर्तरोद्रध्यान	आर्तरौद्रध्यान
,,	९	३२	पूर्वापार	पूर्वापर
,,	१३	२	सहित हैं	सहित) है
,,	१३	२३ से २५	वृत्ति न...प्रसक्तेः ।	वृत्ति– 'न हि...प्रसक्तेः ।'
,,	१३	२७	अ चारित्र	चारित्र
,,	१४	९	२री बार आए हुए 'शुभोपयोग'	की जगह 'अशुभोपयोग'
,,	१४	१०	१ली बार आये हुए 'अशुभोपयोग'	की जगह 'शुभोपयोग'
,,	१४	२५	प्रकृष्टटतर	प्रकृष्टतर
,,	१५	२६	यादि	याति
,,	१८	२	धर्मंध्यानरहिन	धर्मंध्यानरहित
,,	१८	२४	रागरहित है) ।	रागरहित है) । और निर्विकल्पज्ञान (शुद्धात्मानुभव) का विषय (ज्ञेय) पारिणामिक भाव है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ नं.		पंक्ति नं.	अशुद्धि	शुद्धि
ग्रंथ	१९	२९	...प्रमत्तांप्र मत्त...	...प्रमत्ताप्रमत्त
,,	२१	२२	द्रयोंमें	द्रव्योंमें
,,	२१	२२	भेदमे	भेदमें
,,	२२	२४	पृष्ठ नं. १९	पृष्ठ नं. २०
,,	२३	७	इतनाही	इतना ही
,,	२३	११	स्थित्वाधिशय्य	स्थित्वासित्वाधिशय्य
,,	२५	२६	वहिरङ्गसाधसाधनांर्थं	वहिरङ्गसाधनार्थं
,,	२७	९ से ११		टीप नं. १ का अर्थ है ।
,,	२७	१५	प्राधान्येन	प्राधान्येन
,,	२८	२९	यथोण्णस्पर्शस्य	यथोष्णस्पर्शस्य
,,	३०	१२	अ नादी	अनादी
,,	३०	२५	–अपमत्तसंजद–	–अप्पमत्तसंजद–
,,	३०	२६	सुहुमवेसांपराई–	सुहुमसांपराई...
,,	३०	२८	यामे	याने
,,	३०	३०	उददेश	उपदेश
,,	३१	४	थोव कालावट्ठाइ ।'	थोवकालावढ्ठाइ ।'
,,	३१	१३	(उपशम क्षयोपशमक्षायिक)	(उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक)
,,	३७	७	(याने...अवगम है।	(याने...अवगम है।)
,,	३८	२२	गृहस्थाअपि	गृहस्थ अपि
,,	३९	२५	धर्म कहलाता हे	धर्म कहलाता है।
,,	४०	२७		समाप्त
,,	४१	१२	निरपेक्ष 'स्वद्रव्य और पर्याय'	करनेयोग्य 'स्वद्रव्य पर्याय'
,,	४१	२५	,, ,, ,, ,,	,, ,, ,,
,,	४२	२५	"स्वद्रव्य दोनों पर्यायका'	'स्वद्रव्य पर्यायका"
,,	४४	९	'स्वदव्य दोनो पर्याय'	'स्वद्रव्य पर्याय'
,,	४५	५	मई	भई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

5358

प्राक् कथन—

अध्यात्म योगी परमपूज्य श्री १०८ वीरसागर मुनि महाराजजीका प्रतिदिन समयसार, श्लोकवार्तिक, अष्टसहस्री आदि ग्रंथोंका सूक्ष्म वाचन प्रवचन चलता है।

प्रवचनमें किसी मुमुक्षु श्रावकने प्रश्न किया कि चतुर्थ गुणस्थानमें आत्मानुभूति-शुद्धोपयोग या निश्चय सम्यक्त्व होता है या नहीं? इस विषयमें आगम प्रमाण वचनोंका संकलनात्मक एक संक्षिप्त पुस्तक प्रकाशित होना नितांत आवश्यक है। ऐसी बार बार प्रार्थना करनेपर पूज्य महाराजजी द्वारा इस संकलनात्मक ग्रंथ का द्वितीय संस्करण प्रकाशित हो रहा है।

इस पुस्तकमें चारों अनुयोग शास्त्रोंका प्रमाण देकर प्रस्तुत विषयमें समीचन यथार्थ प्रकाश डालनेका प्रयत्न किया गया है।

समयसार ग्रंथ केवल मुनियोंके लिये ही उपयोगी है, ऐसा नहीं है। इसमें परसमयरत-अप्रतिवुद्ध अज्ञानी-मिथ्यादृष्टि को स्वसमयरत-प्रतिबुद्ध ज्ञानी-सम्यग्दृष्टि बननेका उपाय बतलाया है। इसलिये यह ग्रंथ प्रत्येक मुमुक्षु भव्य जीवके लिये; चाहे वह मुनि हो या श्रावक हो सबके लिये दिव्य जीवनदृष्टि देनेवाला अपूर्व आध्यात्मिक ग्रंथ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'समयसार' अध्यात्म ग्रंथ होनेसे इसमें गुणस्थानकृत भेद विवक्षा न रखकर ज्ञानी और अज्ञानी, स्वसमय-परसमय-सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि, प्रतिबुद्ध-अप्रतिबुद्ध इस प्रकार मुख्यतासे दो विवक्षाओंको लेकर ही कथन किया गया है।

'रागी सम्यग्दृष्टिः न भवति' जिसको अणुमात्र भी राग है, अर्थात् रागमें आत्मत्वबुद्धि है वह अज्ञानी है। सम्यग्दृष्टि नहीं है ऐसा कहकर अज्ञानपूर्वक रागको ही कर्मबंधका-अनंत संसारका कारण माना गया है।

'रागी सम्यग्दृष्टिः न भवति' इस विधानपर शंका उपस्थित की गई है कि, यदि रागी सम्यग्दृष्टि नहीं है, तो क्या भरत-पांडवादिक सम्यग्दृष्टि नहीं थे?

इस प्रश्नके उत्तरमें आचार्य कहते कि वे सरागी होकर भी सम्यग्दृष्टि थे।

फिरसे प्रश्न उठाया गया कि, रागी होकर वे सम्यग्दृष्टि कैसे?

इसके उत्तरमें आचार्य कहते है कि– मिथ्यादृष्टिकी अपेक्षा उनको मिथ्यात्व अनंतानुबंधी जनित रागादिका अभाव होनेसे वे भी ज्ञानी-सम्यग्दृष्टि वीतरागी ही है।

इसी प्रकार आचार्यने बार-बार वीतराग स्वसंवेदनका विधान करनेपर प्रश्न उठाया गया है कि–

स्वसंवेदन को बार-बार वीतराग विशेषण क्यों दिया जाता है?

क्या स्वसंवेदन दूसरे प्रकारका भी होता है?

इस प्रश्नके उत्तरमें आचार्य कहते है–

१ जो विषय-कषायके अनुरागपूर्वक स्वसंवेदन होता है वह सराग स्वसंवेदन अज्ञानीको होता है।

२ जो भेदज्ञानपूर्वक आत्मस्वरूपका स्वसंवेदन होता है वह वीतराग स्वसंवेदन है और वह ज्ञानी सम्यग्दृष्टिको होता है।

इन उपर्युक्त दोनों प्रश्नोत्तरोंकी चर्चासे आचार्य जयसेनने भी चतुर्थ गुण-स्थानवर्ती सरागी सम्यग्दृष्टिको भी जघन्यरूपसे वीतरागी-ज्ञानी-सम्यग्दृष्टि माना है। तथा उनको वीतरागी स्वसंवेदन आत्मानुभूति स्वीकृत की गई है। सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति भेदज्ञान–पूर्वक शुद्धोपयोग रूप आत्मानुभूतिके बिना होती नही ऐसा स्पष्ट विधान किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'अयं अहं इति अनुभूतिः' यह मैं हूँ इसप्रकार की स्वानुभूति स्वसंवेदन तो सब आबाल-गोपाल प्राणीमात्र को निरंतर होता है। परंतु जिस स्वसंवेदनमें- स्वानुभूतिमें परके साथ एकत्वबुद्धि होती है वह अज्ञानमूलक होनेसे वह सराग स्वसंवेदन, सराग स्वानुभूति कही जाती है। वह अज्ञानी को होती है।

जिस संवेदनमें– स्वानुभूतिमें भेदज्ञानपूर्वक आत्मस्वरूपका दर्शन, ज्ञान, अनुभव होता है वह सब चाहे वह सरागसम्यग्दृष्टिका हो या वीतराग सम्यग्दृष्टिका, वह सब वीतराग स्वसंवेदन आत्मानुभूति कही जाती है।

यद्यपि लोकव्यवहारमें सोलह ताव देनेपर ही सुवर्ण शुद्ध कहा जाता है; तथापि लौकिकशास्त्रमें सोलह ताव देनेके पूर्वमें भी सुवर्ण परीक्षक सुवर्णकसके आधारसे मलसहित अवस्थामें भी शुद्ध मलसे भिन्न पृथक् सुवर्णका परिज्ञान– अनुभव कर सकता है।

उसीप्रकार वीतराग अवस्थामें तो वीतरागी-संयमी मुनिको शुद्धात्माकी अनुभूति होती है। परंतु सरागअवस्थामें भी चतुर्थ गुणस्थानवर्ती भेद ज्ञानी सरागसम्यग्दृष्टि भी अपने वीतरागी (रागसे भिन्नपृथक्) शुद्ध आत्माकी अनुभूति भेदविज्ञान के आधारपर कर सकता है। यही एक समयसार अध्यात्म ग्रंथका गुढ रहस्य हैं।

एकत्वे नियतस्य शुद्धनयतो व्याप्तुर्यदस्यात्मनः।
पूर्णज्ञानघनस्य दर्शनमिह द्रव्यान्तरेभ्यः पृथक्।
सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमात्।

शुद्धनयसे एकत्व– विभक्त स्वभावमें सुनियत, सुव्यवस्थित, व्यापक, पूर्ण ज्ञानघन जो कारण परमात्मा है, उसका अन्य सब परद्रव्य और परभाव इनसे पृथक् दर्शन– इसीको निश्चय सम्यग्दर्शन कहा है।

शुद्धोपयोगके विना आत्मोपलंभ होता नहीं। आत्मोपलंभ के विना सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती नहीं। शुद्धात्मोपलंभ से ही संवर–निर्जरा होती है। (शुद्धात्मोपलंभात् एव संवरः) चतुर्थगुणस्थान संवर–निर्जराका प्रथमस्थान करणानुयोग ग्रंथमें माना गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसलिये चतुर्थ गुणस्थानमें शुद्धोपयोग–आत्मानुभूति निश्चय सम्यक्त्व वीतराग स्वसंवेदन आदि मानना आवश्यक है यह बात स्पष्ट निर्विवाद सिद्ध हो जाती है।

ज्ञानीके भोग–उपभोग निर्जराके कारण है ऐसा विधान समयसारमें किया गया है। वहाँ ज्ञानीका अर्थ केवल वीतराग-संयमी मान लिया जाय तो वीतरागी-संयमी मुनिको भोग-उपभोगके विधानका अनिष्ट प्रसंग आवेगा।

इसलिये शास्त्रके विधानका यथोचित नयविवक्षावश समीचीन अर्थ लगाना ही सम्यग्ज्ञान कहलाता है। तीर्थ प्रवृत्तिनिमित्त प्रयोजनवश ज्ञानी सम्यग्दृष्टिके व्रत-संयम तपादिक शुभोपयोग संवर निर्जराका कारण उपचारसे-व्यवहारनयसे कहा गया है। परंतु ज्ञानी उन व्रतादिक शुभोपयोगको भी शुभराग मानकर बंधका ही कारण मानता है, संवर-निर्जराका कारण नहीं समझता है। वह यथागुणस्थान आवश्यक कर्म अवश्य करता है परंतु उसमें उसकी उपादेय बुद्धि इष्ट बुद्धि नहीं है। हेय बुद्धीसे ही वह तावत्काल अपवाद मार्ग समझकर असामर्थ्यवश धारण करता है। उसकी निरंतर–भावना–आत्मस्वभावमें स्थिर होनेकी ही रहती है। आत्मस्वभावको वह सर्वथा उपादेय, इष्ट समझता है। ऐसे ज्ञानीके भोग-उपभोग या व्रतादिक सराग होनेके कारण वास्तवमें आस्रव बंधके कारण होते हुये भी उनमें उसकी हेयबुद्धि होनेसे, उपादेय बुद्धि न होनेसे-भेदज्ञानपूर्वक आत्मोपलम्भपूर्वक समीचीन दृष्टि होनेसे वे उपचारसे व्यवहारनयसे संवर-निर्जराके कारण कहे जाते है, तीर्थ और तीर्थ प्रवृत्तिकी ऐसी ही व्यवस्था मानी गई है। (इत्यलम् विस्तरेण)

सोलापूर,
वीर नि. सं. २५०७

पं. नरेन्द्रकुमार शास्त्री
न्यायतीर्थ, महामहिमोपाध्याय, सोलापूर.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दर्शन और आत्मानुभूति

शुद्धोपयोगसे ही (शुद्धात्मानुभूतिसे ही) चतुर्थ गुणस्थान (अविरत सम्यग्दृष्टी गुणस्थान) प्रकट होता है ।

१ शंका– क्या शुद्धात्मानुभूतिसे ही चतुर्थ गुणस्थान प्रकट होता है ? क्या शुद्धोपयोगसे ही चतुर्थ गुणस्थान प्रकट होता है ? शुभोपयोगसे चतुर्थ गुणस्थान क्यों प्रकट नही होता ?

उत्तर– समयसार गाथा नं. २०१ और २०२ की तात्पर्यवृत्तिमें श्री जयसेनाचार्य कहते है कि, निर्विकल्प स्वानुभूतिसे चतुर्थादि गुणस्थान प्रकट होते है ।

परमाणुमित्तयं पि हु रायादीणं तु विज्जदे जस्स ।
ण वि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागमधरो वि ।। २०१ ।। (आ. ख्या.)

अप्पाणमयाणंतो अणप्पयं चावि सो अयाणंतो ।
कह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणंतो ।। २०२ ।। (आ. ख्या.)
रागी सम्यग्दृष्टिर्न भवतीति कथयति

रागी (मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी जनितराग करनेवाला) जीव सम्यग्दृष्टी नही होता है ऐसा कहते है ।

परमाणुमित्तयं पि य रागादीणं तु विज्जदे जस्स
परमाणुमात्रमपि रागादीनां तु विद्यते यस्य हृदये हु स्फुटं

परमाणुमात्र भी मिथ्यात्व अनंतानुबंधीजनित रागका सद्भाव जिसके हृदयमें स्पष्ट है (अथवा ध्रुव–स्वभावमें यदि परमाणुमात्र भी राग माना जाय तो)

णवि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागमधरोवि– ।।
स तु परमात्मतत्त्वज्ञानाभावात् शुद्धबुद्धैकस्वभावं
परमात्मानं न जानाति, न अनुभवति ।

वह परमात्मतत्त्वज्ञानसे रहित होनेसे शुद्धबुद्ध एक स्वभावमय परमात्माको जानता नहीं याने अनुभवन करता नही ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शंका– कथंभूतोऽपि ? कैसा होते हुए भी वह अनुभवता नही ?

उत्तर– सव्वागमधरो वि–सिद्धांतसिंधुपारगोऽपि...।

सर्व आगमका पाठी होता हुआ भी वह निजशुद्धात्माको जानता नहीं अर्थात् अनुभवता नही ।

अप्पाणमयाणंतो अणप्पयं चेव सो अयाणंतो–स्वसंवेदनज्ञानबलेन सहजानंदैकस्वभावं शुद्धात्मानमजानन् तथैवाभावयंश्च शुद्धात्मनो भिन्नं रागादिरूपं अनात्मानं च अजानन् ।

स्वसंवेदनज्ञानबलसे (स्वशुद्धात्मानुभूतिसे) सहजानंद एक स्वभावमय शुद्धात्माको न जाननेवाला तथा उसी प्रकार न अनुभवनेवाला और शुद्धात्मासे (स्वस्वभावसे) भिन्न रागादिरूप अनात्माको न जाननेवाला ।

कह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणंतोस पुरुषो ।

जीवाजीवस्वरूपं अजानन् सन् कथं भवति सम्यग्दृष्टिः ?

वह पुरुष जीवस्वभाव और अजीवस्वभावको न जाननेवाला होनेसे कैसे सम्यग्दृष्टि हो सकता है ?

न कथमपि इति ।

वस्तुस्वरूपको न जाननेवाला किसी भी प्रकारसे सम्यग्दृष्टि (स्वशुद्धात्मानुभूतिवाला) नही होता है। (याने शुद्धात्मानुभूति करनेवालाही सम्यग्दृष्टि होता है)।

किंच रागी सम्यग्दृष्टिर्न भवतीति भणितं भवद्भिः तर्हि चतुर्थपंचमगुणस्थानवर्तिनः तीर्थंकरकुमारभरतसगररामपांडवादयः सम्यग्दृष्टयः न भवन्ति इति ।

यदि रागी जीव सम्यग्दृष्टि (शुद्धात्मानुभूतिवाले) नही होते है ऐसा कहते हो, तो चतुर्थपंचमगुणस्थानवर्ती तीर्थंकर, भरत, सगर, राम और पांडव, कुमार अवस्थामें सम्यग्दृष्टि याने शुद्धात्मानुभूतिवाले नही होते है ?

तन्न ।

चतुर्थपंचमगुणस्थानवर्ती तीर्थंकर, भरत, सगर, राम और पांडव कुमार अवस्थामें सम्यग्दृष्टि (शुद्धात्मानुभूतिवाले) नहीं थे, ऐसा नहीं हैं। अर्थात् चतुर्थपंचमगुणस्थानवाले जीव सम्यग्दृष्टि (शुद्धात्मानुभूतिवाले) है। क्योंकि,

मिथ्यादृष्ट्यपेक्षा त्रिचत्वारिंशत्प्रकृतीनां बंधाभावात् सरागसम्यग्दृष्टयः भवन्ति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिथ्यादृष्टि की अपेक्षासे ४३ प्रकृतिके बंधका अभाव होनेसे सरागसम्यग्दृष्टि (अविरत सम्यक्त्वी–चतुर्थगुणस्थानवाले) होते है।

कथं ? इति चेत्

प्रश्न– चतुर्थ पंचमगुणस्थानवाले सराग होते हुअे भी सम्यग्दृष्टि (शुद्धात्मानुभूतिवाले) कैसे है ?

" चतुर्थगुणस्थानवर्तिनां जीवानां अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वोदयजनितानां पाषाणरेखादिसमानानां रागादीनां अभावात् । "

उत्तर–चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीवोंको अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वके उदयमें होनेवाले पाषाण रेखादिसमान रागादिका अभाव होनेसे, वे चतुर्थगुणस्थानवाले जीव सम्यग्दृष्टि (शुद्धात्मानुभूतिवाले) होते है ।

पंचमगुणस्थानवर्तिनां पुनर्जीवानां अप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभोदयजनितानां भूमिरेखादिसमानानां रागादीनां अभावात् ।

पुनः पंचगुणस्थानवर्ती जीवोंको अप्रत्याख्यानक्रोधमानमायालोभके उदयमें होनेवाले भूमिरेखादिसमान रागादिका अभाव होनेसे पंचमगुणस्थानवर्ती जीव सम्यग्दृष्टि (शुद्धात्मानुभुतिवाले) होते है !

इति पूर्वमेव भणितमास्ते ।

ऐसा पहले भी कह दिया है ।

अत्र तु ग्रंथे पंचमगुणस्थानादुपरितनगुणस्थानवर्तिनां वीतरागसम्यग्दृष्टीनां मुख्यवृत्त्या ग्रहणं। सरागसम्यग्दृष्टीनां गौणवृत्त्या व्याख्यानं। सम्यग्दृष्टिव्याख्यानकाले सर्वत्र तात्पर्येण ज्ञातव्यम् ।

इस ग्रंथमें पंचमगुणस्थानसे उपरके गुणस्थानवर्तीयोंको वीतराग सम्यग्दृष्टियोंका मुख्यवृत्तिसे और सरागसम्यक्त्वीयोंका (चतुर्थगुणस्थानवालोंका) जघन्यसे (अल्पस्थिरतावाली शुद्धात्मानुभूति[1]) होनेसे ग्रहण करना, इस तरह सम्यग्दृष्टिके व्याख्यानकालमें सर्वत्र जानना योग्य है ।

इस प्रकार शुद्धात्मानुभूति चतुर्थगुणस्थानवाले जीवको होती है यह सिद्ध होता है ।

टीप– १ श्री अमृतचन्द्राचार्य समयसार गाथा नं. १३ की टीकामें लिखते है– या तु आत्मानुभूतिः सा आत्मख्यातिरेवात्मख्यातिस्तु सम्यग्दर्शनमेवेति समस्तमेव निरवद्यम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ– जो आत्मानुभूति है वह आत्मख्याति ही है और वही आत्मख्याति सम्यग्दर्शन ही है ऐसा समस्त कथन निर्दोष ही है।

समयसारमें और भी कहा है– आत्मख्याति गाथा नं. १९

"कम्मे णोकम्मह्मि य........"

इस गाथाकी जयसेनाचार्यजीकृत टीका में–

"अपडिबुद्धो अप्रतिबुद्धः स्वसंवित्तिशून्यः बहिरात्मा हवदि भवति !

अर्थ– अप्रतिबुद्ध, बहिरात्मा, स्वसंवित्तिशून्य ये एकार्थवाची हैं। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव बहिरात्मा नहीं कहा जाता है, इसलिए वह स्वसंवित्तिसहितही है – इससे सिद्ध होता है कि, चतुर्थ गुणस्थान वर्ती जीव शुद्धात्मानुभूतिसे सहितही है। इसलिए शुद्धोपयोगसेही चतुर्थ गुणस्थान प्राप्त होता है, शुभोपयोग शुभराग होनेसे शुभोपयोगसे चतुर्थ गुणस्थानकी प्राप्ती नही होती है।

गोम्मटसार जीवकांड कर्णाट्वृत्ति जीवतत्वप्रदीपिका टीका गाथा नं. १, पान नं. ३०, भाग १, में कहा है कि–

न ह्यामतत्वोपलब्धिमन्तरेण सम्यक्त्वसिद्धिः ।।

अर्थ– आत्मोपलब्धि के विना सम्यक्त्व की सिद्धि नही होती है।

२ शंका– प्रथमोपशम सम्यक्त्ववाले अथवा क्षयोपशमसम्यक्त्ववाले चतुर्थगुणस्थानवर्ती (अविरतसम्यक्त्वी) को शुद्धोपयोग (शुद्धात्मानुभव–निर्विकल्प अनुभव) होता है क्या ?

उत्तर– समयसार गाथा नं. ३२०

दिट्ठी जहेव णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव ।
जाणइ य बंधमोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं चेव ।।३२०।। (आत्मख्याति)

उसकी टीका– तात्पर्यवृत्तिमें श्री जयसेनाचार्यजी लिखते है कि,

तस्य त्रयस्य मध्ये भव्यत्वलक्षणपरिणामिकस्य तु यथासंभवं सम्यक्त्वादिजीवगुणघातकं देशघातिसर्वघातिसंज्ञं मोहादिकर्मसामान्यं पर्यायार्थिकनयेन प्रच्छादकं भवति इति विज्ञेयं। तत्र च यदा कालादिलब्धिवशेन भव्यत्वशक्तेर्व्यक्तिर्भवति तदायं जीवः सहजशुद्धपारिणामिकभावलक्षणनिजपरमात्मद्रव्यसम्यक् श्रद्धानज्ञानानुचरणपर्यायेण परिणमति।

अर्थ– उन तीनोंमें (याने जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व इन तीनोंमें) भव्यत्वलक्षणवाला पारिणामिकभावका यथासंभव पर्यायार्थिकनयसे सम्यक्त्वादि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणोंका घात करनेवाला देशघाति सर्वघाति संज्ञावाला मोहादि कर्मसामान्य प्रच्छादक (आवरण करनेवाला) है ऐसा जानना चाहिये । और वहाँ जब कालादिलब्धिके वशसे भव्यत्वशक्तिकी व्यक्ति (प्रकट) होती है तब यह सहजशुद्धपारिणामिक-भावलक्षणनिजपरमात्मद्रव्यका सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणपर्यायसे परिणमता है ।

आगमभाषा

तच्च परिणमनमागमभाषयौपशमिकक्षायोपशमिकक्षायिकभावत्रयं भण्यते ।

और उसही परिणमनको आगमभाषासे औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्व इस प्रकार तीन भावरूप कहा जाता हैं ।

अध्यात्मभाषा

अध्यात्मभाषया पुनः शुद्धात्माभिमुखपरिणामः शुद्धोपयोग इत्यादि पर्यायसंज्ञं लभते ।

और उसही परिणमनको अध्यात्मभाषासे शुद्धात्माभिमुख परिणाम (याने जो चेतनोपयोग परमशुद्धपारिणामिकभाव के तरफ लक्ष्य देकर अथवा परमशुद्धपारिणामिकभावको विषय बनाकर जो शुद्धात्मानुभव परिणाम प्रकट होता है) शुद्धोपयोग, निर्विकल्प, स्वसंवेदन, समाधि, निश्चयसम्यक्त्व, अभेदरत्नत्रय इत्यादि नामोंसे (संज्ञाओंसे) कहा जाता है ।

इससे यह सिद्ध होता है कि, प्रथमोपशम अविरत सम्यक्त्वकी अथवा क्षयोपशम अविरतसम्यक्त्वकी, क्षायिक अविरत सम्यक्त्वकी प्राप्ति होना इसीको शुद्धोपयोग (शुद्धात्मानुभव) कहा है ।

इस विषयमें प्रवचनसार गाथा नं. ८० में कहा है कि—

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं ।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं ॥८०॥ प्रवचनसार

अर्थ— जो अरहंतको द्रव्यपने, गुणपने और पर्यायपने द्वारा जानता है वह अपने आत्माको जानता है उसका मोह अवश्य लयको प्राप्त होता है ।

उसकी पातनिकामें (शीर्षकमें) श्री जयसेनाचार्यजी लिखते है कि,

यदुक्तं शुद्धोपयोगाभावे मोहादिविनाशो न भवति, मोहादिविनाशाभावे शुद्धात्मलाभो न भवति, तदर्थमेवेदानीमुपायं समालोचयति

जो पूर्वमें कहा है कि, शुद्धोपयोगके अभावमें दर्शनमोहादि का विनाश होता नही है, और दर्शनमोहादिके विनाशके अभावमें शुद्धात्मलाभ होता नही, तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्शनमोहका नाश करनेके लिये उपाय बताते है। याने शुद्धोपयोगसे ही दर्शनमोहका उपशमादि होता है (अनादि मिथ्यात्वी हो तो शुद्धोपयोगसे प्रथमोपशमसम्यक्त्व होता है) शुद्धोपयोग और प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी उत्पत्ति इनमें समयभेद नहीं है। यहाँ शुद्धोपयोग यह सहचर हेतु है, जैसे बिजोरा निंबू रसवान् है क्योंकि रुपवान है।

अध्यात्मभाषा	आगमभाषा		
१) निश्चयनयेन निजशुद्धात्मभावनाभिमुखरूपेण सविकल्पस्वसंवेदनज्ञानेन आत्मनि योजयति।	१) अधःप्रवृत्तकरणापूर्वकरणानिवृत्तिकरणसंज्ञदर्शनमोहक्षपणसमर्थपरिणामविशेषबलेन		
निश्चयनयसे निजशुद्धात्मभावना अभिमुखरूपसे सविकल्प स्वसंवेदन ज्ञानसे आत्मामें योजता है।	अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरणवाले करणलब्धि में दर्शनमोहका अभाव करनेके लिये समर्थ परिणाम विशेष बलसे	१ सातिशय मिथ्यात्व	१ अशुद्धोपयोग
२) तदनंतरमविकल्पस्वरूपे प्राप्ते	२) दर्शनमोहान्धकारः प्रलीयते		
उस (करणत्रयके) अनंतर अविकल्प (निर्विकल्प) आत्मानुभूति प्राप्त होती हैं।	दर्शनमोहान्धकार नष्ट करता है।	२ सम्यक्त्व	२ शुद्धोपयोग

इस विषयमें प्रवचनसार गाथा नं. ३३ मे कहा है कि--

जो हि सुदेण विजाणदि अप्पाणं जाणगं सहावेण।
तं सुदकेवलिमिसिणो भणंति लोगप्पदीवरा ॥ प्रवचनसार ॥ ३३ ॥

इसकी टीकामें श्री जयसेनाचार्यजी लिखते है

किं च यथा कोऽपि देवदत्त आदित्योदयेन दिवसे पश्यति रात्रौ किमपि प्रदीपेनेति। तथादित्योदयस्थानीयेन केवलज्ञानेन दिवसस्थानीयमोक्षपर्याये भगवानात्मानं पश्यति, संसारिविवेकिजनः पुर्नानिशास्थानीयसंसारपर्याये प्रदीपस्थानीयेन रागादिविकल्परहितपरमसमाधिना निजात्मानं पश्यतीति ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ– जिस तरह कोई एक देवदत्त दिनमें सूरज के प्रकाशमें देखता है उसी तरह सूरज के जगह केवलज्ञान से दिवसस्थानीय मोक्षपर्यायमें शुद्धात्माको अनुभवता है और संसारी (अव्रती) विवेकीजन (सम्यक्त्वी) निशास्थानीय संसारमें दीपस्थानीय मतिश्रुतज्ञानसे रागादिविकल्परहित (शुद्धोपयोग) परमसमाधिसे (शुद्धोपयोगसे) निजात्माका (स्वभाव शुद्धात्माका) अनुभव करता है।

इससे यह सिद्ध होता हैं कि अव्रती सम्यक्त्वी जीव है उसके पास निशास्थानीय संसार अवस्थामें भी अल्प प्रकाशवाला दीपक है याने अघन्य शुद्धात्मानुभव है और मिथ्यात्वसासादनमिश्र गुणस्थानवर्तीजीवोंके पास अल्प प्रकाशवालाभी दीपक नहीं है याने मिथ्यात्वसासादनमिश्र गुणस्थानवर्ती जीव शुद्धात्माका जघन्यरूपसे भी अनुभव नही करते है।

श्री कुंदकुंदाचार्य बारसणुपेक्खा में (कुंदकुंदभारती पृष्ठ ३१९) लिखते है

सुद्धुवजोगेण पुणो धम्मं सुक्कं च होदि जीवस्स।
तह्मा संवरहेदू झाणो त्ति विंचितए णिच्चं ॥ ६४ ॥

अर्थ– शुद्धोपयोगसे जीवके धर्मध्यान और शुक्लध्यान होता है इसलिये ध्यान (शुद्धात्मानुभव) संवरका कारण है ऐसा निरन्तर विचार करना चाहिये।

चतुर्थगुणस्थानमें धर्मध्यान होता है और शुद्धोपयोगसे धर्मध्यान होता है ऐसा उपर गाथामें कहां है इसलिये शुद्धोपयोगसे ही चतुर्थ गुणस्थान (अव्रती-सम्यक्त्वी) होता है।

३ शंका– तत्त्वानुशासनके अप्रमत्तः प्रमत्तश्च सद्दृष्टिर्देशसंयतः।
धर्मध्यानस्य चत्वारस्तत्त्वार्थे स्वामिनः स्मृता :॥ ४६ ॥

मुख्योपचारभेदेन धर्मध्यानमिह द्विधा
अप्रमत्तेषु तन्मुख्यमितरेष्वौपचारिकं ॥ ४७ ॥ तत्वानु.

इन श्लोकोंका क्या अर्थ है?

उत्तर– तत्त्वार्थसूत्रमें श्री उमास्वामी आचार्यजीने १) अव्रती सम्यक्त्वी, २) देशसंयत, ३) अप्रमत्तगुणस्थान और ४) प्रमत्त गुणस्थान ये चार गुणस्थानवर्ती जीवोंको धर्मध्यानके स्वामी माना है। वह धर्मध्यान १) मुख्य (उत्कृष्ट) धर्मध्यान २) उपचार (जघन्य) धर्मध्यान इस तरह दो प्रकारका है। उसमें उत्कृष्ट धर्मध्यान अप्रत्तगुणस्थानवर्तिजीवोंको होता है और अव्रतीसम्यक्त्वी-गुणस्थानवालेको, देशसंयमीको और प्रमत्त गुणस्थानवाले जीवोंको जघन्य धर्मध्यान होता है। याने धर्मध्यानकी उत्कृष्ट स्थिरता और दृढता सकलसंयमी जीवकी है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और धर्मध्यानकी जघन्य स्थिरता अव्रती सम्यक्त्वीजीवकी है। मिथ्यात्व सासादान-मिश्र गुणस्थानवर्तिजीवोंको धर्मध्यानका स्वामित्व नहीं है।

४ शंका– १) धर्मध्यान याने क्या ?

उत्तर– कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा नं. ४७१ उसकी संस्कृत टीका में श्री शुभचन्द्रजी लिखते है कि,

" धर्मो वस्तुस्वरूपं धर्मादनपेतं धर्म्यं ध्यानं तृतीयम् "

धर्म याने वस्तुस्वरूप (वस्तूका स्वभाव), वस्तु स्वरूपसे रहित न हो ऐसा जो ध्यान उसको धर्मध्यान कहते है। धर्म के विना उस ध्यानका अस्तित्व नहीं पाया जाता है।

कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा नं. ४७२ की संस्कृत टीकामें लिखते है कि,

" धर्म्यं धर्मे स्वस्वरूपे भवं धर्म्यं ध्यानम्। "

धर्म्यं याने अपने निजात्माके स्वभावमय धर्म में होनेवाला वह धर्म्य ध्यान है।

श्री देवसेनाचार्य भावसंग्रहमें लिखते है कि

अहवा वत्थुसहावं धम्मो वत्थू पुणो व सो अप्पा।
झायंताणं कहियं धम्मज्झाणं मुणिदेहिं ।। ३७३ ।।

अर्थ– अथवा वस्तूके स्वभावको धर्म कहते है। और वह वस्तु याने अपना आत्मा है, उस अपने आत्माके स्वभावका जो ध्यान वह धर्मध्यान है। ऐसा मुनीन्द्रोंके द्वारा कहा गया है।

अव्रती सम्यक्त्वी जीव भी धर्मध्यानका स्वामी है इसलिये अव्रती सम्यक्त्वी जीवके द्वारा अपने निजस्वभावका ध्यान होता है। अपने निजस्वभावके ध्यानको ही स्वानुभूति (शुद्धोपयोग) कहते है।

५ शंका भावसंग्रहकी–

जं पुण वि णिरालंबं तं झाणं गयपमायगुण ठाणे।
चत्तगेहस्य जायइ धरियं जिणलिंगरूवस्स ।। ३८१ ।।
जो भणइ कोइ एवं अत्थि गिहत्थाण णिच्चलं झाणं।
सुद्धं च णिरालंबं ण मुणइ सो आयमो जइणो ।। ३८२ ।।
कहियाणि दिट्ठिवाएपडुच्च गुणठाण जाणि झाणाणि।
तह्मा स देसविरओ मुक्खं धम्मं ण ज्झाएई ।।३८३।। (त्रिकलम्)

इसका अर्थ क्या है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तर– इसका अर्थ इस प्रकार करना चाहिए कि, जो मुख्य निरालंब (उत्कृष्ट धर्मध्यानस्वरूपी स्वानुभूतिमय) ध्यान है वह ध्यान गृहत्याग किये हुये, जिनलिंगधारी अप्रमत्तगुणस्थानवर्तिजीवोंको होता है। इसलिये देशविरत (पंचम-गुणस्थानवाले) जीवको मुख्य निरालंब ध्यान (याने सप्तमगुणस्थानवर्ती उत्कृष्ट धर्मध्यान) होता नही। याने गौण धर्मध्यान होता है क्योंकि मुख्य धर्मध्यान नही इसलिये गौण (जघन्य) धर्मध्यानका अभाव नहीं है। जो कोई ऐसा कहता है कि, गृहस्थीजीवको मुख्य शुद्ध निरालंबधर्मध्यान (याने सप्तमगुणस्थानवर्तीका उत्कृष्ट धर्मध्यान) होता है वह दिगम्बर जैन दृष्टीवाद अंगके द्वारा कहे हुये गुणस्थानवर्ती ध्यानोंको मानता नहीं (जानता नही) याने जो गृहस्थी जीव मिथ्यात्वसा-सादानमिश्र गुणस्थानवर्ती है इनको आर्त्तरोद्रध्यान होते है, जो नग्नदिगम्बर मुनि हुये नहीं है, ऐसे गृहस्थी जीव जो अव्रती सम्यक्त्वी और जो देशविरत सम्यक्त्वी जीव है, इनमेंसे अव्रती सम्यक्त्वीको जघन्य (अल्प) णिरालंब-स्वानुभूति होती है, और अव्रतीसम्यक्त्वीके शुद्धस्वानुभूतिसे कुछ अधिकदृढतासे शुद्धस्वानुभूति देशविरत सम्यक्त्वीको होती है और देशविरतसम्यक्त्वीके स्वानुभूतिसे अधिक दृढतासे स्वानु-भूति सकलसंयमीको होती है। इस प्रकारसे धर्मध्यानोंका कथन दिगम्बर जैन दृष्टीवाद अंगमें है। इस प्रकारसे जो मानता नहीं वह दिगम्बर जैन दृष्टीवादको जानता नही। इससे यह सिद्ध होता है कि, अव्रती सम्यक्त्वीको शुद्धात्माका अनुभव होता है। यहाँ सूत्रके ([1]आगमके) सामर्थ्यसे गाथा ३८३ में के मुख्य शब्दका संबंध गाथा नं. ३८१ के 'णिरालंब' शब्दके साथ भी है।

६ शंका– यदि गाथा नं. ३८३ में के मुख्य शब्दका संबंध गाथा नं. ३८१ के णिरालंबके साथ न करके चतुर्थगुणस्थानवर्ती और पंचमगुणस्थानवर्ती जीवोंको निजशुद्धात्माकी स्वानुभूति (अल्प निरालंबध्यान) होती नहीं ऐसा मानेंगे तो क्या बाधा आती है?

उत्तर– तो फिर प्रवचनसार गाथा नंबर ८० की टीकामें श्री जयसेनाचार्यजीने जो लिखा है कि, शुद्धोपयोगसे ही दर्शनमोहका उपशमादि होता है वह घटित होता नहीं। शुद्धोपयोग (शुद्धात्मानुभूति) के अभावमें सम्यक्त्व प्रगट नही होता है तब सम्यक्त्वके अभावमें चतुर्थ पंचम गुणस्थान और सकलसंयमीके गुणस्थान होते ही नही। सम्यक्त्वके शुद्धात्मानुभवके अभावमें मोक्षमार्ग शुरू होता नहीं।

७ शंका– १) बाह्य प्रशमादिपूजाभक्ति इनको देखकर अव्रतीको सम्यक्त्व है ऐसा मानेंगे, २) बाह्यप्रशमादिपूजाभक्ति और अणुव्रतका पालन देखकर देशव्रतीको सम्यक्त्व है ऐसा मानेंगे और ३) बाह्यप्रशमादि भक्ति और महाव्रतका पालन

टीप– १. पूर्वापार आचार्योंके उपदेशके सामर्थ्यसे.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखकर महाव्रतीको सम्यक्त्व है, ऐसा मानेंगे इस तरह इन सबको मोक्षमार्गस्थ मानेंगे तो क्या बाधा आती है ?

उत्तर– श्री कुंदकुंदाचार्य पंचास्तिकायमें लिखते है कि,

अरहंतसिद्धचेदियपवयणगणणाणभत्तिसंपण्णो ।
बंधदि पुण्णं बहुसो ण दु सो कम्मक्खयं कुणदि ॥ १६६ ॥

अर्थ– अरहंत, सिद्ध, चैत्यालय, प्रतिमा, प्रवचन अर्थात् सिद्धान्त मुनिसमूह, ज्ञानकी भक्ति, स्तुति, पूजा, सेवादिकके संपन्न पुरुष बहुत प्रकारका या बहुतवार अनेक प्रकारके पुण्यकर्मको बांधता है। लेकिन वह पुरुष कर्मक्षय नहीं करता (याने संवरपूर्वक निर्जरा अथवा मोक्षमार्गस्थ नही होता) है। उस १६६ नंबरकी गाथाके पातनिकामें श्री अमृतचंद्राचार्यजी लिखते है कि, '**कथञ्चित् बन्धहेतुत्वेन मोक्षमार्गत्वनिरासः अयम्**' याने वह पूजा, भक्ति, प्रशमादिभाव (शुभभाव) बंधका कारण होनेसे पूजा भक्ति प्रशमादिभाव मोक्षमार्ग नहीं है। याने शुद्धात्मानुभव न होनेसे वह अव्रती जीव मिथ्यात्वी (प्रथमगुणस्थानवर्ती) है। क्योंकि [1]परसमयोंमें रत है।

उसी प्रकार शुद्धात्मानुभूतिसे रहित अणुव्रतका पालन करनेवाला जीव भी मिथ्यात्वी (प्रथमगुणस्थानवर्ती) है। श्री धर्मदासजी क्षुल्लकजीने खुद अपना जीवन वृत्त लिखा हुआ हैं। उससे यह निश्चित होता हैं कि, स्वात्मानुभवके पहिले वे अणुव्रत पालन करते थे, पूजादि भाव करते थें तो भी मिथ्यात्वी थे और जब स्वानुभूति हुअी तब वे पंचमगुणस्थानवर्ती हुअे।

उसी प्रकार शुद्धात्मानुभूतिसे रहित महाव्रतका पालन करनेवाला जीव भी मिथ्यात्वी (प्रथमगुणस्थानवर्ती) है। देखो नियमसार गाथा नंबर १४४ और उसकी संस्कृत टीका–

जो चरदि संजदो खलु सुहभावे सो हवेइ अण्णवसो ।
तह्मा तस्स दु कम्मं आवासयलक्खणं ण हवे ॥ १४४ ॥

अर्थ– जो जीव संयत रहता हुआ वास्तवमें शुभभावमें प्रवर्तता है (आचरण करता है), वह अन्यवश याने परवश (मिथ्यात्वी) है इसलिये उसका वह आवश्यकस्वरूपकर्म (शुद्धात्मानुभव) नहीं है।

---

१ टीप– पंचास्तिकाय गाथा १६६ की आ. अमृतचन्द्राचार्य विरचित टीका–
'परसमयप्रवृत्तिनिबन्धनत्वाद् इति।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

“यः खलु जिनेन्द्रवदनारविन्दविनिर्गतपरमाचारशास्त्रक्रमेण सदा संयतः सन् शुभोपयोगे चरति, व्यावहारिकधर्मध्यानपरिणतः अत एव चरणकरणप्रधानः, स्वाध्यायकालमवलोकयन् स्वाध्यायक्रियां करोति, दैनं दैनं भुक्त्वा भुक्त्वा चतुर्विधाहारप्रत्याख्यानं च करोति, तिसृषु संध्यासु भगवदर्हत्परमेश्वरस्तुतिशतसहस्रमुखारविन्दो भवति, त्रिकालेषु च नियमपरायणः इत्यहोरात्रेऽप्येकादशक्रियातत्परः पाक्षिकमासिकचातुर्मासिकसांवत्सरिकप्रतिक्रमणाकर्णनसमुपजनितपरितोषरोमांचकुंचुकित-धर्मशरीरः, अनशनावमौदर्यरसपरित्यागवृत्तिपरिसंख्यानविविक्तशय्यासन-कायक्लेशाभिधानेषु षट्सु बाह्यतपस्सु च संततोत्साहपरायणः, स्वाध्याय-ध्यानशुभाचरणप्रच्यु तप्रत्यवस्थापनात्मकप्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यव्युत्सर्ग-नामधेयेषु चाभ्यन्तर तपोनुष्ठानेषु च कुशलबुद्धिः, किन्तु स निरपेक्षतपोधनः साक्षान्मोक्षकारणं स्वात्माश्रयावश्यककर्म निश्चयतः परमात्मतत्त्व-विश्रान्तिरूपं निश्चयधर्मध्यानं शुक्लध्यानं च न जानीते, अतः परद्रव्यग-तत्वादन्यवश इत्युक्तः।”

अर्थ– जो (महाव्रती) वास्तवमें जिनेंद्रके मुखारविन्दसे निकले हुए परम-आचारशास्त्रके क्रमसे (रीतिसे) सदा संयत रहता हुआ शुभोपयोगमें प्रवर्तता है, व्यावहारिक धर्मध्यानमें परिणत रहता है इसलिये चरणकरणप्रधान (शुभ आचरणके परिणाम जिसको है, ऐसा) स्वाध्यायकालका अवलोकन करता हुवा (स्वाध्याय योग्य कालका ध्यान रखकर) स्वाध्याय क्रिया करता है, प्रतिदिन भोजन करके चतुर्विध आहारका प्रत्याख्यान करता है, तीन संध्याओंके समय (प्रातः, मध्याह्न, तथा सायंकाल) भगवान् अर्हंत् परमेश्वरकी लाखों स्तुति मुखकमलसे बोलता है, तीनों काल नियमपरायण रहता है. इस प्रकार अहर्निश (दिनरात) ग्यारह क्रियाओंमें तत्पर रहता है, पाक्षिक, मासिक, चातुर्मासिक तथा सांवत्सरिक प्रतिक्रमण सुननेंसे उत्पन्न हुए सन्तोषसे जिसका धर्मशरीर रोमांचसे छा जाता है, अनशन, अवमौदर्य, रसपरित्याग, वृत्तिपरिसंख्यान, विविक्त शय्यासन और कायक्लेश नामके छह बाह्यतपमें जो सतत उत्साह परायण रहता है, स्वाध्याय, शुभ आचरणसे च्युत होनेपर पुनः उनमें स्थापनस्वरूप प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य और व्युत्सर्ग नामक अभ्यन्तर तपोंके अनुष्ठानोंमें (आचरणमें) जो कुशलबुद्धिवाला है, परन्तु वह निरपेक्ष तपोधन साक्षात् मोक्षके कारणभूत स्वात्माश्रित आवश्यककर्मको–निश्चयसे परमात्मतत्त्वमें विश्रान्तिरूप निश्चयधर्मध्यानको (शुद्धात्मानुभूतिको) नही जानता अनुभवता नही, तब शुक्लध्यान भी जानता नही याने उस जीवको स्वानुभव नही है इसलिये धर्मध्यान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही नही है– वह प्रथम गुणस्थानवर्ती जीव है मिथ्यादृष्टि जीव है। क्योंकि, आसन्नमव्यता गुण अभीतक प्रकट नहीं हुआ है। इसलिये वह जीव महाव्रतका पालन करता है, प्रशमादि बाह्य परिणाम भी उसके पास है लेकिन शुद्धात्मानुभव नहीं है इसलिये मिथ्यात्वी है।

क्योंकि आगे कहते है कि "आसन्नभव्यतागुणोदये सति" आसन्नभव्यत्व प्राप्त होगा तब 'परमगुरुप्रसादासादितपरमतत्त्वश्रद्धानपरिज्ञानानुष्ठानात्मकशुद्ध-निश्चयरत्नत्रयपरिणत्या निर्वाणमुपयातीति' (उसी समयही) परमगुरुके प्रसादसे प्राप्त परमतत्त्वकी श्रद्धा, ज्ञान, अनुष्ठान प्राप्त होगा याने सम्यक्त्व प्राप्त होगा (शुद्धात्मानुभव प्राप्त होगा) उसके बादही मोक्ष प्राप्त होगा।

और भी देखो प्रवचनसार गाथा नं. ७९

चत्ता पावारंभं समुट्ठिदो वा सुहम्मि चरियम्मि।
ण जहदि जदि मोहादी ण लहदि सो अप्पगं सुद्धं ॥ ७९ ॥

अर्थ– पापारंभको छोडकर शुभ चारित्रमें उद्यत होनेपर भी यदि जीव दर्शनमोहादिको नही छोडता (मिथ्यात्वी हो तो) वह शुद्धात्माको प्राप्त नही होता।

याने शुद्धात्मानुभव नहीं (शुद्धोपयोग नही) है तो दर्शनमोहका उपशमादि न होनेसे महाव्रतका पालन करते हुए प्रशमादिभाव रहते हुए भी मिथ्यात्व–गुणस्थानवर्ती रहा।

और भी देखो समयसार गाथा नं. १५२

परमट्ठम्हि दु अठिदो जो कुणदि तवं वदं च धारेई।
तं सव्वं बालतवं बालवदं विंति सव्वण्हू ॥ १५२ ॥

अर्थ– जो परमार्थमे (शुद्धात्मानुभूतिमें) स्थित नही और तप करता है तथा व्रतोंको धारण करता है। उन सब तप और व्रतोंको सर्वज्ञदेव बालतप (अज्ञानतप) बालव्रत (अज्ञानव्रत) कहते है।

इससे सिद्ध होता है कि, शुद्धात्मानुभूतिसे रहित अणुव्रत अथवा महाव्रत, प्रशमादिभाव मिथ्यात्वगुणस्थानमें भी दिखाई देते हैं। शुद्धात्मानुभूतिसे रहित जो जीव है। वह मोक्षमार्गस्थ नहीं है। और जो शुद्धात्मानुभूतिसे सहित है, वह सम्यक्त्वी है– मोक्षमार्गस्थ है।

देखो– रत्नकरंडश्रावकाचार श्लोक नं. ३३

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान्।
अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुनेः ॥ ३३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ– दर्शनमोहसे रहित (शुद्धात्मानुभूतिवाला) अव्रती गृहस्थ, मोक्षमार्गस्थ (सम्यक्श्रद्धा, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र[१] (स्वरूपाचरण चरित्र) सहित है लेकिन दर्शन मोहसहित (शुद्धात्मानुभूतीसे रहित) यहा व्रतधारी मुनि मोक्षमार्गस्थ नहीं है इसलिये शुद्धात्मानुभूतिवाला अव्रती गृहस्थ शुद्धात्मानुभूतिसे रहित सर्व प्रकारके महाव्रतोंका पालन करनेवाले मुनिसे श्रेष्ठ है।

इससे सिद्ध होता है कि, शुद्धात्मानुभूतिसे ही मोक्षमार्ग शुरू होता है। जिस समय शुद्धात्मानुभव होता है उसी समय श्रद्धा, ज्ञान और चरित्रमें समीचीनता आती है।

प्रवचनसार गाथा नं. ९ की तात्पर्यवृत्तिमें श्री जयसेनाचार्यजी लिखते है कि

"व्यवहारेण गृहस्थापेक्षया यथासंभवं सरागसम्यक्त्वपूर्वकदान पूजादिशुभानुष्ठानेन, तपोधनापेक्षया तु मूलोत्तरगुणादि शुभानुष्ठानेन परिणतः शुभो ज्ञातव्य, इति।"

अर्थ– व्यवहारसे गृहस्थ की अपेक्षासे यथासंभव सरागसम्यक्त्वपूर्वक दानपूजादि शुभानुष्ठानसे परिणत शुभ जानना चाहिये और तपोधन अपेक्षासे मूलगुण, उत्तरगुणादि शुभानुष्ठानसे परिणत शुभ जानना चाहिये। याने दानपूजादि भाव, अणुव्रतपालनके भाव और मूलोत्तरगुणपालनके भाव ये सब शुभभाव है, वह शुभोपयोग है।

जो शुद्धात्मानुभूतिसे रहित है और दानपूजादि, अणुव्रतकी क्रिया और मूलोत्तरगुणपालनकी क्रिया करते है वे शुद्धोपयोगसे रहित होनेसे मोक्षमार्गस्थ नहीं है।

८ शंका– प्रवचनसार गाथा नं. ९ की तात्पर्यवृत्तिमे– श्री जयसेनाचार्यजी लिखते है कि–

---

१. टीप– श्लोकवार्तिक अ. १, सू. १, कारिका १०५ में की वृत्ति न हि चारित्रमोहोदयमात्राद् भवद्चारित्रं दर्शनचारित्रमोहोदयजनिताद् अचारित्राद् अभिन्न एव इति साधयितुं शक्यं, सर्वत्र कारणभेदस्य फलाभेदकत्वप्रसक्तेः।

अर्थ– चौथे गुणस्थानमें दर्शनमोहनीय के संबंधसे रहित होकर केवल चारित्र-मोहनीयके उदयसे होनेवाला जो अ चारित्र है, वह पहले गुणस्थानमे दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीयके उदयसे होनेवाले मिथ्याचारित्रसे अभिन्न ही है, इस बातको सिद्ध करना शक्य नहीं है। शक्य न हो तो भी मान लिया तो सर्वत्र कारणभेद होनेपर भी कार्यफलमें अभेद माननेका प्रसंग आ जायेगा!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

" १) मिथ्यात्वसासादानमिश्रगुणस्थानत्रये तारतम्येनाशुभोपयोगः २) तदनंतरमसंयतसम्यग्दृष्टिदेशविरतप्रमत्तसंयतगुणस्थानत्रये तारतम्येन शुभोपयोगः.... "

अथवा– " बृहद्द्रव्यसंग्रह गाथा ३४ की टीकामें– " ...ततोऽप्यसंयत सम्यग्दृष्टि श्रावकप्रमत्तसंयतेषु पारम्पर्येण शुद्धोपयोगसाधक उपर्युपरि तारतम्येन शुभोपयोगो–वर्तते " तो इसका अर्थ क्या है ?

उत्तर– १) मिथ्यात्व, सासादान मिश्र इन तीन गुणस्थानोंमें तरतमतासे अशुभोपयोग है, यहाँ तरतमता शब्द महत्वका है। मिथ्यात्व गुणस्थानवर्तीजीव भी एक अंतर्मुहूर्त शुभोपयोग करता है उसके बाद एक अंतर्मुहूर्त शुभोपयोग करता है। फिर एक अंतर्मुहूर्त अशुभोपयोग करता है, फिर एक अंतर्मुहूर्त अशुभोपयोग करता है।

देखो– कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा नं. ४७०–

अंतोमुहुत्तमेत्तं लीणं वत्थुम्मि माणसं णाणं ।
झाणं भण्णदि समए असुहं च सुहं (सुद्धं) च तं दुविहं ।। ४७० ।।

चेतनोपयोग वस्तुमें एक अंतर्मुहूर्ततक रहता है उसे आगममें ध्यान कहते है वह अशुम और शुभ (अथवा पाठभेदसे शुद्ध) ऐसे दो प्रकारका है।

श्री समयसारमें गाथा नं. १७१ में कहा है क्षयोपशमज्ञानीका उपयोग अंतर्मुहूर्तमें बदलता है।

और भी देखो महापुराण पर्व–२१, श्लोक नं. ३८, ४४

अप्रशस्ततमं लेश्यात्रयमाश्रित्य जृम्भितम् ।
अन्तर्मुहूर्तकालं तदप्रशस्तावलम्बनम् ।। ३८ ।।

अर्थ– अप्रशस्ततम लेश्याओंका आश्रय करके चार प्रकारका आर्त्तध्यान होता है और वह अंतमुहूर्तकालतक अप्रशस्तका अवलंबन लेनेसे होता है।

प्रकृष्टतरदुर्लेश्यात्रयोपोद्बलबृंहितम् ।
अन्तर्मुहूर्तकालोत्थं पूर्ववद्भवमिष्यते ।। ४४ ।।

अर्थ– प्रकृष्टतर तीनों दुर्लेश्याओंके बलसे रौद्र ध्यान वृद्धिगत होता है, उसकी मर्यादा अन्तर्मुहूर्त हैं और आर्तध्यानके समान इसमें क्षायोपशमिक भाव है।

तंदुलमत्स्य अशुभ परिणाम करनेसे सातवे नरकमें गया। कोई अभव्य जीव जिनलिंग धारण करके शुभभावोंसे नवग्रैवयकके स्वर्गमें जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवंधरजीने कुत्तेको णमोकार मंत्र दिया तो कुत्ता मिथ्यात्वी ही था, लेकिन शुभभाव होनेसे भवनत्रिकमें देव हुआ। पार्श्वनाथजीने गृहस्थी जीवनमें सर्पयुगलको णमोकार मंत्र सुनाया, तो वह सर्पयुगल मिथ्यात्वसहित शुभभाव रहनेसे भवनत्रिकमें पैदा हुअे। इससे यह सिद्ध होता है कि, मिथ्यात्व गुणस्थानमें शुभ और अशुभ उपयोग होता है इसलिये श्री आचार्यजीने 'तरतमता" इस शब्दका प्रयोग किया है।

२) असंयत (अव्रती) सम्यग्दृष्टि, देशविरतसम्यक्त्वी, और प्रमत्तसंयत इन गुणस्थानोंमें तरतमतासे शुभोपयोग है। यहाँ भी तरतमता शब्द महत्वका है। प्रमत्तसंयतगुणस्थानमें शुभोपयोग होता है। कभी किसीको आर्तध्यान (अशुभोपयोग) भी होता है। (देखो ज्ञानार्णव प्रकरण नं. २५, श्लोक नं. ३८)

शुद्धोपयोगसे सप्तम गुणस्थान होनेके बाद प्रमत्तसंयत (छठ्टा गुणस्थान) होता है। प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें विकल्प है।

शुद्धोपयोगसे ही असंयतसम्यक्त्वी (अव्रतीसम्यक्त्वी) और शुद्धोपयोगसेही देशविरतसम्यक्त्वीका गुणस्थान प्रगट होता है उसके बाद वह सविकल्प अवस्थामें आता है (अशुद्धोपयोग याने शुभाशुभ भावमें आता है) उसके बाद कभी शुद्धोपयोग होता है, फिर शुभोपयोग होता है। अव्रती सम्यक्त्वीकों अशुभोपयोग भी होता है। क्षायिकसम्यक्त्वी श्रेणिकने आत्महत्या की। क्षायिक सम्यक्त्व होते हुए भी श्रेणिकका मरतेसमय अशुभोपयोग था। इसलिये तरतमतासे कहनेमे यहाँ शुद्धोपयोग, शुभोपयोग और अशुभोपयोग भी है यह दिखाया है।

चतुर्थगुणस्थानवर्तीजीवके शुभोपयोगसे पंचमगुणस्थानवर्तीजीवका शुभोपयोग उत्कृष्ट है और पंचमगुणस्थानवर्तीजीवके शुभोपयोगसे छठ्टे गुणस्थानवर्तीजीवका अधिकतर उत्कृष्ट शुभोपयोग है।

और भी देखो श्री समंतभद्राचार्य रत्नकरंडश्रावकाचारमें लिखते है कि, गृहस्थीको सामायिकके समय शुद्धोपयोग है–

सामयिके सारम्भाः परिग्रहा नैव सन्ति सर्वेऽपि।
चेलोपसृष्टमुनिरिव गृही तदा याति यतिभावम्॥ १०२॥

अर्थ– यत: सामायिककालमें आरम्भसहित सभी परिग्रह नहीं होते हैं, अत: उस समय गृहस्थ वस्त्रसे वेष्टित मुनि के समान मुनिपनेको याने शुद्धात्मानुभूतिको प्राप्त करता है (शुद्धात्मानुभव लेता है)।

और भी देखिये प्रवचनसार गाथा नं. २४८–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दंसणणाणुवदेसो सिस्सग्गहणं च पोसणं तेसिं।
चरिया हि सरागाणं जिणिंदपूजोवदेसो य ॥ २४८ ॥

तात्पर्यवृत्तिमें श्री जयसेनाचार्यजी लिखते है कि–

" ननु शुभोपयोगिनामपि क्वापि काले शुद्धोपयोगभावना दृश्यते, शुद्धोपयोगिनामपि क्वापि काले शुभोपयोगभावना दृश्यते, श्रावकाणामपि सामायिकादिकाले शुद्धभावना दृश्यते, तेषां कथं विशेषो भेदो ज्ञायते इति। परिहारमाह– युक्तं उक्तं भवता, परं किंतु ये प्रचुरेण शुभोपयोगेन वर्तंन्ते ते यद्यपि क्वापि काले शुद्धोपयोगभावनां कुर्वन्ति तथापि शुभोपयोगिन एव भण्यन्ते। येऽपि शुद्धोपयोगिनस्ते यद्यपि क्वापि काले शुभोपयोगेन वर्तन्ते तथापि शुद्धोपयोगिन एव। कस्मात्? बहुपदस्य प्रधानत्वाद् आम्रवननिम्बवनवदिति ॥

अर्थ– शंका– शुभोपयोगवालोंको कभी कभी शुद्धोपयोगभावना (शुद्धात्मानुभूति) दिखाओी देती है और शुद्धोपयोगवालोंको कभी कभी शुभोपयोग-भावना (शुभोपयोग) दिखाओी देती है, और श्रावकोंको भी सामायिकादिकालमें शुद्धभावना (शुद्धात्मानुभूति) दिखाओी देती है तो उनमें क्या भेद है?

उत्तर– आपका कहना सत्य है (याने शुभोपयोगवालोंको कभी कभी शुद्धोपयोग (शुद्धात्मानुभव होता है और शुद्धोपयोगवालोंको कभी कभी शुभोपयोग होता हैं और श्रावकोकोंभी सामायिकादिकालमें शुद्धभावना (शुद्धात्मानुभूति) होती है यह सत्य है। लेकिन जो प्रचुरतासे (बहुलतासे) शुभोपयोगसे प्रवर्तते है वे कभी कभी शुद्धोपयोगभावना (शुद्धात्मानुभव) करते है तथापि बहुलताकी अपेक्षासे शुभोपयोगवाले है ऐसा कहते है और जो शुद्धोपयोग-वाले है वे यद्यपि कभी कभी शुभोपयोगसे प्रवर्तते है तथापि बहुलताकी अपेक्षासे वे शुद्धोपयोगवाले है ऐसा कहनेमें आता है। जैसे किसी वनमें आम्रवृक्ष अधिक और नीम, अशोक इत्यादि वृक्ष थोडे है तो उस वनको आम्रवन कहते है और किसी वनमें नीमके वृक्ष बहुत है और आम्रादि वृक्ष कम हैं उस वनको नीमका वन कहते है।

इससे यह सिद्ध होता है कि प्रवचनसार गाथा नं. ९ की टीकामें असंयतसम्यक्त्वी और देशविरत सम्यक्त्वीको तरतमतासे याने बहुलताकी अपेक्षासे शुभोपयोगवाले कहा है और उनको कभी कभी शुद्धोपयोग (शुद्धात्मानुभव) होता ही है। और प्रवचनसार गाथा नं. ८० की टीकाका जो उद्धरण दिया है उससे स्पष्ट होता है कि शुद्धात्मानुभूतिसे (शुद्धोपयोगसे) ही सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९ शंका– आपने जो प्रवचनसार गाथा नं. २४८ की श्री जयसेनाचार्यकी टीका उद्धृत की है उसमें शुद्धभावना शब्द पडा हैं तो शुद्धभावनाका अर्थ शुद्धोपयोग अथवा शुद्धात्मानुभव हो सकता है। इसके लिये कुछ आगम प्रमाण दीजिये।

उत्तर– देखो बृहत् द्रव्यसंग्रहकी श्री ब्रह्मदेवसूरी विरचित संस्कृत टीका–

उसकी द्वितीय अधिकारकी पातनिकामें लिखा है कि, शुद्धभावना याने निर्विकल्पसमाधि (शुद्धात्मानुभूति), शुद्धोपयोग-इत्यादि.

"स च पूर्वोक्तविवक्षितैकदेशशुद्धनिश्चय आगमभाषया किं भण्यते– स्वशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपेण भविष्यतीति भव्यः, एवंभूतस्य भव्यत्वसंज्ञस्य पारिणामिकभावस्य संबन्धिनो व्यक्तिर्भण्यते। अध्यात्मभाषया पुनर्द्रव्यशक्तिरूप–शुद्धपारिणामिकभावविषये भावना भण्यते, पर्यायनामान्तरेण निर्विकल्पसमाधिर्वा शुद्धोपयोगादिकं चेति"

अर्थ– जो भव्य जीव मिथ्यात्वी था वह जब मोक्षमार्गस्थ होता है तब एकदेशशुद्ध निश्चय (एकदेशशुद्ध) होता है। उस एकदेश शुद्धनिश्चयको (याने एकदेशशुद्धपरिणामको)

आगमभाषासे इस तरह कहते है कि, जो स्वशुद्धात्माके सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूप होगा वह भव्य होता है उस भव्यत्वनामक पारिणामिक भावकी व्यक्ति (प्रगटता) हो गयी।

अध्यात्मभाषासे कहते है कि उस जीवने द्रव्यशक्तिरूप पारिणामिक भावके विषयमें भावना की (याने अपने निजशुद्धात्म स्वभावका चिंतन स्मरण-अनुभव किया) उस शुद्धात्मभावनाको पर्याय नामान्तरसे निर्विकल्प समाधि, शुद्धोपयोग, अभेदरत्नत्रय, निश्चयसम्यकत्व, शुद्धात्मानुभूति शुद्धात्मानुभव इत्यादि कहते है।

इससे यह सिद्ध हुआ कि, शुद्धभावना, शुद्धोपयोग भावना, शुद्धोपयोग, निर्विकल्पसमाधि, शुद्धात्मानुभव, अभेदरत्नत्रय ये एकार्थवाची शब्द (समान अर्थी शब्द) है।

१० शंका– प्रवचनसार गाथा नं. २५४ की तात्पर्यवृत्तिमें

"....निर्विकार चिच्चमत्कार भावनाप्रतिपक्षभूतेन विषय कषाय-निमित्तोत्पन्नेनार्तरौद्रदुर्ध्यानद्वयेन परिणतानां गृहस्थानामात्माश्रितनिश्चय ...." - धर्मस्यावकाशो नास्ति,......."

इसका क्या अर्थ है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तर– निर्विकारचिच्चमत्कारभावनाके प्रतिपक्षभूत (शुद्धात्मानुभूतिसे रहित याने धर्मध्यानरहित याने मिथ्यात्वसहित) विषयकषायके निमित्तसे उत्पन्न हुए आर्तरौद्र दो ध्यानोंके द्वारा परिणत जो गृहस्थीजीव है उनको आत्माश्रित-निश्चयधर्मध्यानका (शुद्धात्मानुभवका) अवकाश नहीं है। लेकिन जो अव्रती सम्यक्त्वी धर्मध्यान [वस्तुस्वरूपको जानकर अपने स्वभावका (पारिणामिक-भावका) चिंतवन] करनेवालेको शुद्धात्मस्वभाव आश्रित शुद्धात्मानुभव होता है उसका निषेध नहीं किया।

११ शंका– समयसार गाथा नं. ९६ की तात्पर्यवृत्तिमें श्री जयसेनाचार्यजी लिखते है कि,

"ननु वीतरागस्वसंवेदनज्ञानविचारकाले वीतरागविशेषणं किमिति क्रियते प्रचुरेण भवद्भिः, किं सरागमपि स्वसंवेदनज्ञानमस्तीति ? अत्रोत्तरं। विषयसुखानुभवानंदरूपं स्वसंवेदनज्ञानं सर्वजनप्रसिद्धं सरागमप्यस्ति। शुद्धात्मसुखानुभूतिरूपं स्वसंवेदज्ञानं वीतरागमिति व्याख्यानकाले सर्वत्र ज्ञातव्यमिति भावार्थः ॥"

इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर– शंकाकार पूछता है कि, वीतरागस्वसंवेदनज्ञानका विचार करते समय वीतराग ऐसे विशेषणका प्रचुरतासे (बहुलतासे) प्रयोग करते हो तो क्या सराग (रागसहित) स्वसंवेदनज्ञान भी होता है।

श्री जयसेनाचार्यजी उत्तर देते है कि, सर्व जन प्रसिद्ध विषय सुखानु-भवानंदरूप स्वसंवेदनज्ञान सरागस्वसंवेदनज्ञान भी है। (अज्ञानी का स्वसंवेदनज्ञान राग (अनंतानुबंधि क्रोधमानमायालोभ मिथ्यात्वोदय जनित कषाय) सहित है। और शुद्धात्मसुखानुभूतिरूप स्वसंवेदज्ञान वीतराग स्वसंवेदन है, (याने सम्यक्त्वीका (चतुर्थादिगुणस्थानवर्ती जीवका) स्वसंवेदनज्ञान वीतराग स्वसंवेदन है, क्योंकि, अनंतानुबंधि-क्रोधादि मिथ्यात्वोदयजनित रागरहित है)।

१२ शंका– श्री शुभचंद्राचार्यजी ज्ञानार्णवमें लिखते है कि

"खपुष्पमथवा शृङ्गं खरस्यापि प्रतीयते।
न पुनर्देशकालेऽपि ध्यानसिद्धिर्गृहाश्रमे ॥ १७ ॥" प्रकरण ४

इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर– इस प्रकरणका नाम है ध्यानगुणदोष। इसमें शुक्ल ध्यानकी दृष्टिसे कथन किया है। उस श्लोकका यह अर्थ है कि, आकाशपुष्प अथवा खरविषाणका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होना कदाचित् सम्भव है परन्तु किसी भी देशकालमें गृहस्थाश्रममें ध्यानकी (याने शुक्लध्यानकी) सिद्धि होना सम्भव नहीं हैं।

इस श्लोकके कथनके द्वारा, " गृहस्थीजीवको धर्मध्यान होता है " इसको बाधा नहीं आती, क्योंकि, श्रीशुभचंद्र आचार्यजी ही ज्ञानार्णव ग्रंथमें लिखते है कि,

स्वयमेव प्रजायन्ते विना यत्नेन देहिनाम्।
अनादिदृढसंस्काराद्दुर्ध्यानानि प्रतिक्षणम् ॥ ४३ ॥ प्रकरण २६

अर्थ— यह दुर्ध्यान (अप्रशस्त अथवा अपध्यान अथवा आर्त्तरौद्र ध्यान) है। सो जीवोंके अनादि कालके संस्कारसे विना ही यत्नसे स्वयमेव निरन्तर उत्पन्न होते हैं। इससे सब छद्मस्थोंको निगोदादिसे संज्ञी पंचेंद्रियतक जीवोंको ध्यान है यह सिद्ध हुआ।

इत्यार्तरौद्रं गृहिणामजस्रं ध्याने सुनिन्द्ये भवतः स्वतोऽपि।
परिग्रहारम्भकषायदोषैः कलङ्कितेऽन्तकरणे विशंकम् ॥ ४१ ॥
प्रकरण २६

अर्थ— इस प्रकार यह आर्त्त और रौद्रध्यान गृहस्थियोंके परिग्रह आरंभ और कषायादि दोषोंसे मलिन अंतःकरणमें स्वयमेव निरंतर होते हैं इसमें कुछ भी शंका नहीं है यह आर्त्तरौद्रध्यान निन्दनीय है।

क्षायोपशमिको भावः कालश्चान्तर्मुहूर्तकः।
दुष्टाशयवशादेतदप्रशस्तावलम्बनम् ॥ ३९ ॥ प्रकरण २६

अर्थ— यह क्षायोपशमिकभाव है इसका काल अंतर्मुहूर्त है और दुष्ट आशयके वशसे अप्रशस्तका (पर पदार्थका) अवलंबन करनेवाला है।

अब धर्मध्यानका स्वामी चतुर्थगुणस्थानवर्ती जीव भी है यह दिखाते है।

किंच कैश्चिचच धर्मस्य चत्वारः स्वामिनः स्मृताः।
सद्दृष्टयाद्यप्रमत्तान्ता यथायोग्येन हेतुना ॥ २८ ॥ प्रकरण २६

अर्थ— यथायोग्य हेतुसे अव्रती सम्यक्त्वी, देशविरत सम्यक्त्वी, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत यह चार गुणस्थानवर्ती जीव धर्मध्यानके स्वामी है ऐसा कितनेही (अनेक) आचार्योंद्वारा कहा गया है।

इसके पहले श्री नागसेनमुनि विरचित तत्त्वानुशासनका श्लोक नं. ४६ उद्धृत कियाही है। श्री पूज्यपादाचार्य सर्वार्थसिद्धिमें अध्याय ९, सूत्र नं. ३६ की टीकामें लिखते है कि, " तदविरतदेशविरतप्रमत्तांप्र मत्तसंयतानां भवति "।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ– वह धर्मध्यान अविरतसम्यक्त्वी देशविरत सम्यक्त्वी, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत इनको होता है।

१३ शंका-- शुद्धात्मानुभूति शुक्लध्यान में ८ वे गुणस्थानसे होती है उसी प्रकार धर्मध्यानमें शुद्धात्मानुभूति होती है तो धर्मध्यानमें और शुक्लध्यानमें समानता है क्या ?

उत्तर– चतुर्थगुणस्थानमें होनेवाली शुद्धात्मानुभूति और पंचम गुणस्थान, सप्तमगुणस्थान और अपूर्वकरण (आठवा) गुणस्थानादि और सिद्धभगवान इनको होनेवाली शुद्धात्मानुभूति जाति अपेक्षासे समान है। देखो 'ज्ञानार्णव' ग्रंथमें शुद्धोपयोग अधिकार (प्रकरण नं. २९) में श्री शुभचंद्राचार्यजी लिखते है कि,

" इति साधारणं ध्येयं ध्यानयोर्धर्मशुक्लयोः ।
विशुद्धिः स्वामिभेदेन भेदः सूत्रे निरूपितः " ॥ १०४ ॥

अर्थ– इस प्रकार धर्मध्यान और शुक्लध्यानमें साधारण ध्येय (समान ध्येय याने ध्यानके योग्य आत्मतत्व (कारणपरमात्मा-निजस्वभाव शुद्ध आत्मा अथवा शुद्धपारिणामिकभाव) समान ही है। उसमें स्वामियोंके भेदसे होनेवाली विशुद्धि विविध प्रकारकी होती हैं। इस स्वामिभेदकी प्ररूपणा आगममें की गयी है।

धर्मध्यानमें और शुक्लध्यानमें इस प्रकार ध्यान किया जाता है कि,

" यः सिद्धात्मा परः सोऽहं योऽहं स परमेश्वरः ।
मदन्यो न मयोपास्यो मदन्येन तु नाप्यहम् " ॥ ४५ ॥

(ज्ञानार्णव, प्रकरण– २९)

अर्थ– जो सिद्ध परमात्मा है, वह मै हूँ और जो मैं हूँ वह सिद्धपरमात्मा है। न मेरे द्वारा मुझसे भिन्न दूसरा कोई आराधनीय है और न मै ही मुझसे भिन्न दूसरेके द्वारा आराधनीय हूं। तात्पर्य यह है कि यथार्थमें (निश्चयनयसे) मैं स्वयं परमात्मा हूँ। इसलिये निश्चयनयसे मैं ही उपास्य (आराधनीय) और मैं ही उपासक (आराधक) हूँ। उपास्य और उपासकमें कोई भेद नहीं है।

इसलिये धर्मध्यानमें अपने निजस्वभावका (पारिणामिकभावका) ध्यान किया जाता है वैसे ही शुक्लध्यानमें भी अपने निजस्वभावका (पारिणामिकभावका) ध्यान किया जाता है। इस परिणामिक भावके चिंतवनको शुद्धोपयोग, शुद्धात्मानुभूति, निश्चयरत्नत्रय, निर्विकल्पसमाधि, शुद्धध्यान, सत्ध्यान इत्यादि कहते है।

श्री जिनसेनाचार्यजी महापुराणमें पर्व २१, श्लोक ११ में लिखते हैं कि,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

5358

धीबलायत्तवृत्तित्वाद्ध्यानं तज्ज्ञैनिरुच्यते ।
यथार्थमभिसन्धानादपध्यानमतोऽन्यथा ॥ ११ ॥

अर्थ– बुद्धिपूर्वक (बुद्धिके आश्रयसे) यथार्थके साथ [वस्तुस्वरूप का ज्ञान करके निजस्वभावशुद्धपरमात्मा (पारिणामिकभाव–कारण परमात्मा) के साथ] अभिसंधान करनेपर ध्यान अथवा सत्ध्यान अथवा शुद्धात्मानुभूति होती है। और बुद्धिपूर्वक (बुद्धिके आश्रयसे) अन्यथा याने अयथार्थके साथ (वस्तुस्वरूपका ज्ञान करके या वस्तुस्वरूपका ज्ञान न करके स्व द्रव्यगुणपर्याय के भेदके साथ अथवा अन्य द्रव्योंके द्रव्यगुणपर्यायके साथ) अभिसंधान करनेपर जो ध्यान होता है वह अपध्यान (असत् ध्यान अथवा अशुद्धात्मानुभूति) है। इस प्रकारसे ज्ञानियोंने कहा है। याने बुद्धिपूर्वक जो विचार किया वह ध्यान है। ध्यानके १) सत्, और २) असत् ऐसे भेद है। असत् के १) शुभ, और २) अशुभ ऐसे भेद है।

इसी बातको श्रीकुंदकुंदाचार्यजी प्रवचनसार गाथा नं. १८१ में कहते है, देखो–

सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावं ति भणिदमण्णेसु ।
परिणामो णण्णगदो दुक्खक्खयकारणं समये ॥ १८१ ॥

अर्थ– परके प्रति (दूसरोंके बारेमें) शुभपरिणाम पुण्य है और परके प्रति (दूसरोंके बारेमें) अशुभ परिणाम पाप है। और जो परिणाम दूसरोंके प्रति जाता नहीं ऐसा परिणाम उसी समय दुःखक्षयका (संवरपूर्वक निर्जराका-शुद्धात्मानुभूतिका–परमानंदका–निराकुलताका) कारण है ऐसा कहते है।

याने अपने निजस्वभावशुद्धात्मा (पारिणामिकभाव) से अन्य द्रव्योंमें (अपने आत्माके द्रव्यगुणपर्यायके भेदमें अथवा अन्यद्रव्योंके द्रव्यगुणपर्यायमें) शुभपरिणाम पुण्य है और अपने निजस्वभावशुद्धात्मा (पारिणामिकभाव) से अन्य द्रयोंमें (अपने आत्माके द्रव्यगुणपर्यायके भेदभें अथवा अन्य द्रव्योंके द्रव्यगुणपर्यायमें) अशुभपरिणाम पाप है। और जो परिणाम निजस्वभाव–शुद्धात्मामें (पारिणामिकभावमें) रहता है याने परमें जाता नहीं है वह शुद्धोपयोग परिणाम उसी समय दुःखक्षयका (शुद्धात्मानुभवका परमानंदका) कारण है।

इससे यह सिद्ध होता है– शुभ और अशुभ भावोंको असत् (अशुद्ध) ध्यान कहते और शुद्धोपयोग–शुद्धभावको सत् (शुद्ध) ध्यान कहते है।

बुद्धिपूर्वक शुद्धनयका (अपने निजस्वभावकी दृष्टिसे अखंड आत्माका) चिंतवन करनेसे शुद्धात्माकी उपलब्धि होती है। बुद्धिपूर्वक अशुद्धनयके विषयका चिंतवन करनेसे अशुद्धात्माकी उपलब्धि होती है।

देखो श्री कुंदकुंदाचार्यजी समयसारमें लिखते है कि,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धं चेवप्पयं लहदि जीवो ।
जाणंतो दु असुद्धं असुद्धमेवप्पयं लहइ ।। १८६ ।।

अर्थ-- शुद्ध आत्माको (स्वभावको- पारिणामिकभावको) जानता हुआ जीव शुद्ध ही आत्माको पाता है और अशुद्ध आत्माको जानता हुआ जीव अशुद्ध आत्माको पाता है ।

अव्रती गृहस्थ भी अपने निजशुद्धात्मस्वभावका चिंतन करता है और उसको शुद्धात्मानुभव होनेसे संवरपूर्वक निर्जरा होती है ।

देखो सर्वार्थसिद्धि अध्याय ९, सूत्र २८ की टीकामें लिखा है-

आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि ।। २८ ।।
तदेतच्चतुर्विधं ध्यानं द्वैविध्यमश्नुते । कुतः ?
प्रशस्ताप्रशस्तभेदात् ।

आर्त, रौद्र, धर्म्य और शुक्ल ये चार ध्यान हैं । उनमेंसे आर्त्तरौद्र को अप्रशस्त (अशुद्ध-असत्) ध्यान कहते है और धर्मशुक्लको प्रशस्त (शुद्ध-सत्) ध्यान कहते है । इस प्रकार ध्यान के दो प्रकार होते है ।

'कर्मदहनसामर्थ्यात् प्रशस्तम्'

कर्मदहन का सामर्थ्य होनेसे धर्म और शुक्ल ध्यानको प्रशस्त कहते है । इससे सिद्ध होता है कि, धर्मध्यानसे संवरपूर्वक निर्जरा होती है । सम्यक्त्वी अव्रतीगृहस्थीको धर्मध्यान होनेसे संवरपूर्वक निर्जरा होती है । धर्म याने वस्तुका स्वभाव । अपने निजशुद्धात्मस्वभावका जो ध्यान वह धर्मध्यान है । उसको ही शुद्धध्यान, सत्ध्यान, शुद्धोपयोग कहते है । उस धर्मध्यानकी (शुद्धात्मानुभूतिकी) अधिकतर दृढता होनेसे वही जीव सकल संयमी होता है । उस ही स्वभावके ध्यानकी अधिकतम दृढता बन जाती है, और अधिकतम स्थिरता होती उसे शुक्लध्यान कहते है ।

पहले पृष्ठ नं. १९ पर यह बताया है कि, धर्मध्यान और शुक्लध्यानमें अपने निजस्वभावका ध्यान है ।

१४ शंका- अव्रतीगृहस्थी निजस्वभावका (अपने पारिणामिकभावका) चिंतवन कर सकता है क्या ?

उत्तर- अव्रती गृहस्थी जीव भी अपने निजस्वभावका चिंतवन कर सकता है । देखो महापुराण पर्व २१, श्लोक नं. २१;

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किमत्र बहुना यो यः कश्चिद्भावः सपर्ययः ।
स सर्वोऽपि यथाम्नायं ध्येयकोटिं विगाहते ।। २१ ।।

अर्थ– ध्यानमें विषय कौनसा होता है इसके बारेमें ज्यादा विचार करनेका कारण नहीं है। यथा आम्नाय जगत का कोओी भी पदार्थ, उसके द्रव्य, गुण, पर्याय ध्येयकोटीमें (ध्यानमें) आते है। इसलिये अव्रती गृहस्थी जीव अपने निजस्वभावका ध्यान कर सकता है।

इतनाही नही, तो किसी भी अवस्थामें (बैठे हुए, लेटे हुए अथवा अर्ध-पद्मासन, पद्मासन, खड्गासनादिमें) ध्यान हो सकता है देखो, महापुराण पर्व २१, श्लोक ७५

देहावस्था पुनर्यैव न स्याद्ध्यानोपरोधिनी ।
तदवस्थो मुनिर्ध्यायेत् स्थित्वाधिशय्य वा ।। ७५ ।।

इसलिये अव्रती गृहस्थ भी वस्तुस्वरूपको जानकर अपने स्वभावका (शुद्धनयका) चिंतवन करता है तब सम्यक्त्व होता है। देखो समयसार गाथा नं. ११

ववहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ ।
भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो ।। ११ ।।

अर्थ– व्यवहारनय अभूतार्थ (आश्रय करने योग्य नही) है, और शुद्धनय भूतार्थ है ऐसा ऋषीश्वरोंने दिखाया है। जो जीव भूतार्थका आश्रय करता है वह जीव निश्चयकर सम्यग्दृष्टि होता है।

इससे सिद्ध होता है कि, अव्रती गृहस्थी जीव वस्तुस्वरूप जानकर शुद्धनयका आश्रय करता है (ध्यान करता है, शुद्धात्मानुभव करता है) उसी समय सम्यक्त्वी होता है।

जो जीव अनादि मिथ्यादृष्टि है, अव्रती गृहस्थी हैं वह वस्तुस्वरूपको जानकर शुद्धनयका चिंतवन करता है तब शुद्धात्मानुभव–निर्विकल्प–होता है उसी समय दर्शनमोहका उपशम होता है, प्रथमोपशम सम्यक्त्व होता है, सम्यग्ज्ञान, होता है शुद्धोपयोग होता है। वहाँ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूपाचरण चारित्र (शुद्धोपयोग) होनेमें समय भेद नही। यह ही प्रवचनसार गाथा नं. ८० की तात्पर्यवृत्तिमें श्री जयसेनाचार्यजीने दिखाया है। इसका उद्धरण पृष्ठ नं. ५ पर किया है।

जो सादि मिथ्यादृष्टि अव्रती जीव है वहभी शुद्धात्मानुभूतिसेही (शुद्धोपयो-गसेही) प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है। उसके बाद क्षयोपशम सम्यक्त्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्त करता है। और कोई सादि मिथ्यात्वी अव्रती जीव भी शुद्धात्मानुभूतिसे क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है।

क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करनेके बाद ही अव्रती जीव भी क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करता है। उदा. श्रेणीकने नरकगतिका बंध करनेके बाद क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया। उसके बाद अव्रती रहते हुए क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया। इसलिये व्रत लेनेके बाद ही शुद्धात्मानुभूति होती है ऐसा नहीं है और शुद्धात्मानुभूतिसे शुभाशुभभावोंका संवर होता है।

देखो तत्वार्थ सूत्र अध्याय ६ वा सूत्र १, ३, २.

कायवाङ्मनःकर्म योगः ॥ १ ॥ स आस्रवः ॥ २ ॥

शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य ॥ ३ ॥

शुभभावसे और अशुभ भावसे आस्रव होता है। मोक्षमार्ग तो शुभाशुभ भावोंके संवरपूर्वक होता है और सम्यग्दर्शनसे मोक्षमार्ग शुरू होता है। तो शुद्धात्मानुभूतिसे (शुद्धोपयोगसे) मोक्षमार्ग शुरू होता है। मिथ्यात्वगुणस्थानमें संवरपूर्वक[1] निर्जरा नहीं होती।

१५ शंका– तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय ६, सूत्र नं. २१ में

सम्यक्त्वं च ॥ २१ ॥

सम्यक्त्वको देवगतिका कारण कहा है यह कैसे ?

उत्तर– सम्यक्त्व प्राप्त होते समय शुद्धोपयोग होता है उसी समय शुद्धात्मानुभूति (निर्विकल्पता) होती है याने सम्यग्ज्ञान होता है। उसके बाद श्रद्धा सम्यक् वैसी की वैसी रहती है और वह सम्यग्ज्ञान सविकल्प होता है, चारित्रमें अशुद्धोपयोग आता है तो सम्यक्त्वके साथ जो अप्रत्याखानादिकषायरूप जो शुभराग है वह शुभभाव देवगतिके बंधका कारण है। सम्यग्दर्शनवाली शुद्धधारा अथवा शुद्धज्ञानधारा बंधका कारण नहीं है। अव्रती सम्यक्त्वीको ४३ प्रकृतियोंके बंधका अभाव है याने अव्रती सम्यक्त्वीको ४३ प्रकृतियोंका संवर है। क्योंकि तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय ९, सूत्र नं. १

आस्रवनिरोधः संवरः।

आस्रवके निरोधको संवर कहते हैं।

१६ शंका– तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय ९, सूत्र नं. २ और ३

टीप– १) बृहद्द्रव्यसंग्रह गाथा ४३ की टीका– 'मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने तावत् संवरो नास्ति'।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः ॥ २ ॥
तपसा निर्जरा च ॥ ३ ॥

वह संवर गुप्ति इत्यादि द्वारा होता है और तपके द्वारा संवरपूर्वक निर्जरा होती है और आपने आगमोंके उद्धरणोंके द्वारा यह सिद्ध किया है कि, अव्रती सम्यक्त्वीको संवर होता है। तो तत्त्वार्थ सूत्रोंके कथनके साथ इसका मिलान कैसे?

उत्तर– देखो बृहद्द्रव्य संग्रह गाथा नं. ३५ की टीकामें श्री ब्रह्मदेवजी लिखते है कि–

निश्चय	व्यवहार
१) निश्चयेन विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजात्मतत्त्वभावनोत्पन्नसुख-सुधास्वादबलेन समस्तशुभाशुभ-रागादिविकल्पनिवृत्तिर्व्रतम् ।	**१) व्यवहारेण तत्साधकं हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहाच्च यावज्जीवनिवृत्तिलक्षणं पञ्चविधं व्रतम् ।**
निश्चयसे विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावी निजात्मतत्त्वकी भावनासे उत्पन्न सुखरूपी सुधाके आस्वादके बलसे सब शुभाशुभ-रागादिविकल्पोंकी निवृत्ति वह व्रत है।	व्यवहारसे उसके साधक हिंसा, असत्य चोरी, अब्रह्म और परिग्रहके आजीवन त्यागलक्षणरूप पांच प्रकारके व्रत हैं।
२) निश्चयेनानन्तज्ञानादिस्वभावे निजात्मनि सम् सम्यक् समस्त-रागादिविभावपरित्यागेन तल्लीन-तच्चिन्तनतन्मयत्वेन अयनं गमनं परिणमनं समितिः	**२) व्यवहारेण तद्बहिरंग-सहकारिकारणभूताचारादिचरण-ग्रन्थोक्ता ईर्याभाषैषणादाननिक्षे-पोत्सर्गसंज्ञाः पञ्च समितयः ।**
निश्चयसे अनंतज्ञानादिस्वभावी निजात्मामें सम् अर्थात् सम्यक् प्रकारसे सब रागादिविभावोंके परित्याग द्वारा निजात्मामें लीनता – चिंतन–तन्मयतासे 'अयन'–गमन–परिणमन करना वह समिति है।	व्यवहारसे उसके बहिरंग सहकारि कारणभूत आचारादि चरणानुयोगके ग्रन्थोंमें कथित ईर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेपण और उत्सर्ग नामक पांच समितियाँ हैं।
३) निश्चयेन सहजशुद्धात्म-भावनालक्षणे गूढस्थाने संसारकारण-	**३) व्यवहारेण बहिरङ्गसाध-साधनार्थं 'मनोवचनकायव्यापार-**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रागादिभयात्स्वस्यात्मनो गोपनं प्रच्छादनं झम्पनं प्रवेशनं रक्षणं गुप्तिः ।

निश्चयसे सहजशुद्धात्माकी भावनारूप-लक्षणयुक्त गुप्त स्थानमें (अपने निज-पारिणामिकभावमें) संसारके कारणरूप रागादिके भयोंसे अपने आत्माका छिपाना, ढकना, झम्पना, प्रवेश करना, अथवा रक्षा करना वह गुप्ति है ।

४) निश्चयेन संसारे पतन्त-मात्मानं धरतीति विशुद्धज्ञानदर्शन-लक्षणनिजशुद्धात्मभावनात्मको धर्मः

निश्चयसे संसारमें पडते हुए आत्माको धारण करके रखता है वह विशुद्धज्ञान-दर्शनलक्षणमय निजशुद्धात्माकी भावनारूप धर्म है ।

इत्यादि ।

निरोधो गुप्तिः ।

व्यवहारसे वहिरंग साधनके लिये मन वचन और कायाके व्यापारको रोकना वह गुप्ति है ।

४) व्यवहारेण तत्साधनार्थं देवेन्द्र-नरेन्द्रादिवन्द्यपदे धरती-त्युत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौच-संयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्य-लक्षणो दशप्रकारो धर्मः ।

व्यवहारसे उसके साधनके लिये देवेन्द्र, नरेन्द्र, आदिद्वारा वन्द्यपदमें जो धरता है, पहुंचाता है वह उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य और ब्रह्मचर्यरूप दस प्रकारका धर्म है ।

इत्यादि ।

अब देखो प्रवचनसार गाथा नं. ९ की टीकामें श्री जयसेनाचार्यजी लिखते है कि,

"व्यवहारेण ....तपोधनापेक्षया तु मूलोत्तरगुणादिशुभानुष्ठानेन परिणतः शुभो ज्ञातव्य इति" ।

याने व्यवहारसे तपोधनकी अपेक्षासे मूलोत्तरगुणादिशुभानुष्ठानसे परिणत भाव शुभभाव (शुभोपयोग) है ऐसा जानो । तो मूलोत्तर गुणोंमें गुप्ति इत्यादि आ जानेसे व्यवहाररूप व्रत गुप्ति, समिति धर्म इत्यादि शुभभाव सिद्ध हुअे । तो शुद्धात्मानुभूति (अपने निजस्वभावकी भावना) ही संवरका कारण है । इसलिये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुद्धात्मानुभूतिसे संवरपूर्वक निर्जरा होती है। इसलिये व्यवहाररूप व्रतगुप्ति इत्यादिको उपचारसे संवरका कारण कहा है। याने व्यवहाररूप व्रतगुप्ति इत्यादिसे शुभभाव होनेसे, पुण्यास्रव होता है। याने व्यवहाररूप व्रतगुप्ति इत्यादि निश्चयसे [1]संवरपूर्वक निर्जराके कारण नहीं है। शुद्धात्मानुभूति लेते समय (अपने पारिणामिकभावकी भावना करते समय) जो अपने आत्मगुणोंका प्रतपन होता है वह तप है। इसलिये शुद्धात्मानुभवसे (शुद्धोपयोगसे) संवरपूर्वक निर्जरा होती है। शुद्धात्मानुभूतिवाला अव्रती जीव भी आत्मानुभूतिसे रहित जिनलिंगधारी (द्रव्यलिंगी) मुनिसे श्रेष्ठ है देखो पृष्ठ नं. १२

अर्थ– अध्यात्मभाषासे शुद्धात्मभावना रहित व्रतदानादिक पुण्यबंधके ही कारण है, मुक्तीके कारण नहीं है और आगमभाषासे वीतरागसम्यक्त्वरहित व्रतदानादिक पुण्यबंधके ही कारण है मुक्तीके कारण नहीं है

१७ शंका– तो यह निर्विकल्प आत्मानुभव (चिंतानिरोध) अव्रती गृहस्थको कैसे होता है? शुद्धात्मानुभूतिमें विषय कौनसा है?

उत्तर– देखो तत्त्वानुशासन श्लोक नं. ५८, ६३, ६४, ६५, ५४–

द्रव्यपर्याययोर्मध्ये प्राधान्येन यदर्पितम् ।
तत्र चिंतानिरोधो यस्तद्ध्यानं बभणुर्जिना ॥ ५८ ॥
द्रव्यार्थिकनयादेकः केवलो वा तथोदितः ।
अंतःकरणवृत्तिस्तु चिंतारोधो नियंत्रणा ॥ ६३ ॥
अभावो वा निरोधः स्यात्स च चिंतांतरव्ययः ।
एकचिंतात्मको यद्वा स्वसंविच्चिंतयोज्झितः ॥ ६४ ॥

अर्थ– द्रव्य और पर्यायमें प्रधानतासे (द्रव्यसे–निश्चयसे) जो अर्पित होता है। उस निश्चयनयके विषयका जो ध्यान होता है वह चिंतानिरोध ध्यान (निर्विकल्प शुद्धात्मानुभव) है ऐसा जिनेन्द्र भगवान कहते है।

द्रव्यार्थिकनयसे यह आत्मा केवल एक ही है। उसे जानना यथोदित है उस अंतःकरणवृत्तिको चिंतारोध नियंत्रणा कहते हैं।

अथवा अभावको निरोध कहते है और अन्य चिंताओंका नाश होना, अभाव अथवा निरोध कहलाता है। अथवा अन्य चिंताओंसे रहित जो एक चिंतात्मक

टीप– १. समयसार तात्पर्यवृत्ति– पुण्यपापाधिकारकी समुदाय पातनिका- ...अध्यात्मभाषया शुद्धात्मभावनां विना आगमभाषयां तु वीतरागसम्यक्त्वं विना व्रतदानादिकं पुण्यबन्धकारणमेव न च मुक्तिकारणं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक चितारूप (चिंतवनरूप) अपने आत्मस्वभावका ज्ञान वह भी एक अग्र आत्मा कहलाता है ।

तत्रात्मन्यसहाये यच्चिंतायाः स्यान्निरोधनम् ।
तद्ध्यानं तदभावो वा स्वसंवित्तिमयश्च सः ॥ ६५ ॥

अर्थ- उस स्वभावस्वरूप असहाय (पारिणामिकभाव) एक अपने आत्मामें चिंतवन करनेसे चिंताका निरोध होता है, वह ध्यान चिंताका (विकल्पका) अभाव करता है और वह स्वस्वभावमें स्वसंवित्तिमय (स्वानुभूतिमय) होता है ।

ततोऽनपेतं यज्ज्ञानं तद्धर्म्यं ध्यानमिष्यते ।
धर्मो हि वस्तुयाथात्म्यमित्यार्षेऽप्यभिधानतः ॥ ५४ ॥

अर्थ- वस्तुस्वरूपको जानकर आत्मस्वभावको जो जानता है उस आत्मानुभूतिसे अनपेत (अविनाभावी) जो ज्ञान उससे जो प्राप्त होता है उसे धर्म्यध्यान (शुद्धात्मानुभव) कहते है । क्योंकि वस्तुके याथात्म्य स्वरूपको जानना ही आर्षमें धर्म कहा गया । इससे सिद्ध हुआ कीं अव्रती गृहस्थ वस्तुस्वरूपको जानकर अपने स्वभावका ध्यान कर सकता है और उस ध्यानको धर्मध्यान (शुद्धात्मानुभव-चितानिरोध) कहते है ।

१८ शंका- अव्रती सम्यक्त्वीकी शुद्धात्मानुभूति और देशविरतसम्यक्त्वीकी शुद्धात्मानुभूति और भावलिंगी सकलसंयमीकी शुद्धात्मानुभूति इनमें फर्क क्या है ?

उत्तर- अव्रती सम्यक्त्वीकी शुद्धात्मानुभूति, देशविरत सम्यक्त्वीकी शुद्धात्मानुभूति और भावलिंगी सकलसंयमीकी शुद्धात्मानुभूति जाति अपेक्षासे समान है लेकिन गुणस्थानकी अपेक्षासे, दृढताकी, स्थिरताकी अपेक्षासे भेद है ।

देखो तत्त्वानुशासन श्लोक नं. ४९-

सामग्रीतः प्रकृष्टया ध्यातरि ध्यानमुत्तमम् ।
स्याज्जघन्यं जघन्याया मध्यमायास्तु मध्यमम् ॥ ४९ ॥

अर्थ- सकलसंयमीवालेके पास उत्कृष्ट सामग्री रहनेसे उत्तम शुद्धात्मानुभूति है । देशसंयमीवालेके पास मध्यम सामग्री रहनेसे मध्यम शुद्धात्मानुभव है और अव्रती सम्यक्त्वीके पास जघन्य सामग्री होनेसे जघन्य शुद्धात्मानुभव होता है ।

चतुर्थगुणस्थानमें सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तीनों है । देखो प्रमेयकमलमार्तंड- अ २, सूत्र १२, पृष्ठ २४५;

तथाहि यस्य तारतम्यप्रकर्षस्तस्य क्वचित्परमप्रकर्षः यथोष्ण-स्पर्शस्य, तारतम्यप्रकर्षश्चासंयतसम्यग्दृष्ट्यादौ सम्यग्दर्शनादेरिति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिस वस्तुका तरतमरूपसे प्रकर्ष होता है, उसका किसीमें तो अवश्य परम प्रकर्ष होता है। जैसे उष्ण स्पर्शमें तरतमता और प्रकर्ष दिखाई देता है। इसीतरह असंयम सम्यग्दृष्टीमें सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र जघन्यरूपसे है। वह रत्नत्रय ही आगेके गुणस्थानोंमें प्रकर्षको बढता हुआ परम प्रकर्षको प्राप्त होता है।

इसके संदर्भमें देखो– क्षु. १०५ मनोहरवर्णी (सहजानंदवर्णी) के परीक्षा-मुखसूत्रपर प्रवचन – (भाग ८, ९, १०, पृष्ठ– २९२) "चौथे गुणस्थानमें रत्नत्रयकी छोटी अवस्था है, फिर ऊपरके गुणस्थानोंमें रत्नत्रय ऊँचा बढ जाता है।"

इसलिये अव्रतीसम्यक्त्वीको शुद्धात्मानुभव है और मिथ्यात्वीको शुद्धात्मानुभव नहीं है।

१९ शंका– प्रवचनसार गाथा नं. १४ में लिखते है, शुद्धोपयोग परिणत आत्मस्वरूप का निरूपण करते है–

सुविदिदपयत्थसुत्तो संजमतवसंजुदो विगदरागो।
समणो समसुहदुक्खो भणिदो सुद्धोवओग त्ति ॥ १४ ॥

तो यहाँ समणको याने मुनिको शुद्धोपयोगी कहा हैं और आप शुद्धोपयोगसे चतुर्थ गुणस्थान प्रगट होता है ऐसा कहते हो। यह कैसे ?

उत्तर– शुद्धोपयोगसे (शुद्धात्मानुभूतिसे) चतुर्थ गुणस्थान प्रकट होता है इसमें बाधा आती नहीं, क्योंकि, चतुर्थगुणस्थानमें जघन्य शुद्धात्मानुभूति है और वह शुद्धात्मानुभूति देशविरतिमें मध्यम शुद्धात्मानुभूति है और उत्कृष्ट शुद्धात्मानुभूति सकलसंयमीको होती है। इस प्रकारका कथन किया है वह पूर्वापर आचार्योंके कथनको बाधा नहीं देता।

शुद्धात्मानुभूतिसे (शुद्धोपयोगसे) चतुर्थ गुणस्थान प्रगट होता है यह न माननेसे क्या बाधा आती है यह पूर्वमें विवेचन करके दिखाया है।

२० शंका– चतुर्थगुणस्थानमें शुद्धात्मानुभव होता है तब कोई व्रती नहीं बनेंगे ?

उत्तर– जिस बेपारसे आपको लाभ होता है तो वह बेपार आप जादा करते हो। जिस क्रियासे आपको आनंद मिलता है वह क्रिया यह जीव अपने आप बार बार करता है। ज्यों ज्यों परमानंद मिलेगा त्यों त्यों आकुलता कम कम हो जाती है। ज्यों ज्यों शुद्धात्मानुभव होगा त्यों त्यों अशुद्धात्मानुभव (विषयकषायभाव) दूर होता ही है।

देखो श्री पूज्यपादाचार्यजी इष्टोपदेशमें लिखते है कि,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यथा यथा समायति संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम् ।
तथा तथा न रोचन्ते विषयाः सुलभा अपि ॥ ३७ ॥

अर्थ-- जैसे जैसे शुद्धात्मानुभव (शुद्धोपयोग) होता है वैसे वैसे विषय सुलभ होते हुए भी विषयोंयें रूचि रहती नहीं ।

तो जब शुद्धात्मानुभवमें अधिक दृढता होगी तब वह जीव 'अपने आप व्रती हो जाता है व्रती बनना नहीं पडता ।' कोई जीव इसी भवमें अव्रती गृहस्थी अवस्थामें शुद्धात्मानुभव करेगा और आगेके किसी भवमें व्रती होगा । उदाहरणार्थ– श्रेणीकने मनुष्यभवमें शुद्धात्मानुभव किया । अभी नरकमें है तो भी शुद्धात्मानुभव करता है । आगेके मनुष्यभवमें वह जीव व्रती बनेगा और मोक्ष जायेगा ।

कोई जीव इसी भवमें अव्रती गृहस्थी अवस्थामें शुद्धात्मानुभव करेगा कुछ काल बाद उसी भवमें व्रती बनेगा । जैसे भरत चक्रवर्तीके ९२३ पुत्र तो जन्मते समय अनादी मिथ्यात्वी थे । उसके बाद प्रथमोपशम सम्यक्त्व (शुद्धात्मानुभव) प्राप्त किया । कुछ कालके बाद क्षयोपशम क्षायिकसम्यक्त्वी (शुद्धात्मानुभवी) हुए । उसके बाद महाव्रती हुए और उसी भवसे मोक्ष गये ।

सीता जन्मके समय मिथ्यात्वी थी, उसके बाद उसने शुद्धात्मानुभव प्राप्त किया उसके बाद उसने देशसंयम प्राप्त किया ।

२१ **शंका–** ऐसा कहते है कि, धवलाकारने दशवे गुणस्थानतक धर्मध्यान माना हैं तो शुद्धात्मानुभूतिवाला (स्वभावका) धर्मध्यान केवल सकलसंयमीको होता है। अव्रती सम्यक्त्वीमें और देशविरत सम्यक्त्वीमें स्वभावके ध्यानका (धर्मध्यानका) खपुष्पवत् अभाव है ऐसा मानेंगे तो क्या बाधा आती है ?

उत्तर– तो आपकी मान्यतासे (१) चतुर्थगुणस्थानवालेको और देशसंयमीको निश्चय सम्यक्त्व नहीं ऐसा सिद्ध होगा । यह बात धवलाकारको (श्री वीरसेनाचार्यजीको) मान्य नहीं, क्योंकि, उन्होंने धवल पुस्तक १३ में पृष्ठ ७४ पर–

'असंजदसम्मादिट्ठी-संजदासंजद-पमत्तसंजद-अपमत्तसंजद-अपुव्व-संजद-अणियट्टिसंजद सुहुमवेसांपराईयरववगोवसामएसु धम्मज्झाणस्स पवुत्ती होदित्ति जिणोवएसादो ।'

यामे असंयतसम्यक्त्वी, देशसंयतसम्यक्त्वी, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत तथा क्षपक और उपशमकवाले आठसे दस गुणस्थानवर्तीयोंकी धर्मध्यानमें प्रवृत्ति होती है, ऐसा जिनदेवका उददेश है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धवल पुस्तक १३– पृष्ठ ७४ पर वे लिखते है कि–

'.... दोण्णं पि ज्झाणाणं विसयं पडि भेदाभावादो।' ....'एदेहि दोहि वि सरूवेहि दोण्णं ज्झाणाणं भेदाभावादो किंतु धम्मज्झाणमेय-वत्थुम्हि थोव कालावट्ठाइ।'

याने धर्मध्यान और शुक्लध्यान इन दोनों भी ध्यानोंमें विषयकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है। ...दोनों (धर्मध्यान और शुक्लध्यान इन दोनों) में स्वरूपोंकी अपेक्षामें कोई भेद नहीं है किन्तु इतनी विशेषता है कि धर्मध्यान एक वस्तुमें अल्पकालतक रहता है। श्री वीरसेनाचार्यजीने ऐसा कथन किया है। अव्रती गृहस्थको प्रथमोपशम सम्यक्त्व, क्षयोपशमसम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व होता है– धवल पुस्तक १, पृष्ठ ३९६–

त्रिष्वपि सम्यग्दर्शनेषु यः साधारणः अंशः तत्सामान्यम्।
तत्र यथार्थ श्रद्धानं प्रति साम्योपलम्भात्॥

अर्थ– तीनों (उपशम क्षयोपशम क्षायिक) सम्यग्दर्शनोंमें जो साधारण धर्म है वह सामान्य है।

शंका– क्षायिक, क्षायोपशमिक, औपशमिक सम्यग्दर्शनोंमें परस्पर भिन्न भिन्न होनेपर सदृशता कैसे ?

उत्तर– उन तीनोंमें सदृशता नहीं ऐसा नहीं है, क्योंकि, उन तीनोंमें यथार्थ श्रद्धानके प्रति समानता पाई पा जाती है।

प्रथमोपशम सम्यक्त्ववाला अव्रती गृहस्थ भी ४३ प्रकृतियोंका बंध नहीं करता (याने संवर करता) है ऐसा धवलाकार का कथन है। इसलिये एकदेश शुद्धि अव्रती सम्यक्त्वीको है। २) अव्रती गृहस्थ स्वभावको (ध्रुवको) जानता है, नहीं, यह कहना बाधित है, क्योंकि, जिनागमका अभ्यास करनेवाला जीव औदयिक भाव, औपशमिकभाव, क्षायोपशमिकभाव, क्षायिकभाव, पारिणामिक भावोंको जानता है। द्रव्यका लक्षण सत् है और सत्का लक्षण उत्पादव्ययध्रुव है यह जानता है।

२२ शंका– उत्पादव्ययध्रुवमें जो ध्रुव है वह विकलादेशी (अंश) है। उस विकलादेशी ध्रुवको अव्रती गृहस्थ जानता है, लेकिन सकलादेशी ध्रुवकी दृष्टिसे अखंड द्रव्यको जानता नहीं ऐसा मानेंगे तो क्या बाधा आती है ?

उत्तर– देखो अष्टसहस्री-अध्याय ३, पृष्ठ २११–२१२.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम् ।
शोकप्रमोदमाध्यस्थं जनो याति सहेतुकम् ॥ ५९ ॥

अर्थ– सुवर्णघटार्थी, सुवर्णमुकुटार्थी और सुवर्णार्थी क्रमशः सुवर्णघटका नाश होनेपर शोकको, सुवर्णमुकुटके उत्पन्न होनेपर हर्षको और दोनों ही अवस्थाओंमें (पर्यायोंमें) सुवर्णकी स्थिति होंनेसे माध्यस्थ भावको प्राप्त होता है और यह सब सहेतुक होता है ।

भावार्थ– एक सुवर्णका घट था । उस घटको तोडकर मुकुट बनाया । कोई तीन अव्रती जीव थे । एक को सुवर्णका घट चाहिये था दूसरेको मूकुट चाहिये था और तीसरेको सुवर्ण चाहिये था । जब पहले व्यक्तीने घट का व्यय देखा तो उसे दुःख हुआ । दूसरे व्यक्तीने मुकुटका उत्पाद देखा तो उसे आनंद हुआ । तीसरे व्यक्तीने सुवर्ण द्रव्य (ध्रुव) देखा तो वह माध्यस्थ (दुःख और आनंदसे रहित) रहा ।

श्री विद्यानंदाचार्यजी लिखते है कि,

'प्रतीतिभेदं इत्थं समर्थयते सकललौकिकजनस्य आचार्यः ।'

श्री समंतभद्राचार्य सब लौकिकजनोंके प्रतीति (अनुभूति) के भेदका समर्थन करते है (अनुभूतिके भेदको दिखाते है) ।

इससे यह सिद्ध होता है कि एक द्रव्य है । उसका सत् लक्षण है । उस ही द्रव्यके उत्पाद–व्यय–ध्रुव है ।

घटार्थी जीवने व्ययकी दृष्टिसे वह अशेषधर्मात्मक द्रव्य देखा तो उसको दुःखकी अनुमूति हुअी । मुकुटार्थी जीवने उत्पादकी दृष्टिसे वही अशेषधर्मात्मक द्रव्य देखा तो उसको सुखकी अनुभूति हुई ।

सुवर्णद्रव्यार्थी जीवने ध्रुव (पारिणामिक भाव अथवा द्रव्य) के दृष्टिसे उसी अशेषधर्मात्मक द्रव्यको देखा तो उसको माध्यस्थकी – शांतपरिणामकी अनुभूति हुई ।

इसमें उत्पादकी अनुभूति और व्ययकी अनुभूति, इनको पर्यायकी अथवा विशेषकी अनुभूति कहते है । और ध्रुवकी अनुभूतिको द्रव्यकी अथवा सामान्यकी अनुभूति कहते हैं ।

इससे यह सिद्ध हुआ कि अव्रती गृहस्थ भी ध्रुवकी (पारिणामिकभावकी) दृष्टिसे अखंड द्रव्यकी अनुभूति कर सकता है ।

तो फिर अपना आत्मा भी एक द्रव्य है । उस अपने आत्मद्रव्यके द्रव्यगुणपर्याय जानकर ध्रुवकी दृष्टिसे अखंड द्रव्यकी अनुभूति अव्रती गृहस्थ भी कर सकता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्यायकी दृष्टिसे अपने आत्मद्रव्यको मैं मनुष्य, स्त्री, पुरुष, संसारी, छद्मस्थ रागी, मोही, मुनि, अल्पज्ञ इत्यादि पर्यायस्वरूप देखनेसे सुखदुःख होते है, आकुलता होती है परमानंद नहीं होता। और द्रव्यकी (अपने निजात्मस्वभावकी) दृष्टिसे अपने आत्मद्रव्यको देखनेसे निराकुलता-परमानंद होता है, मोहरागद्वेष नहीं होते।

देखो परमानंद स्तोत्रमें लिखते है कि,

सद्ध्यानं क्रियते भव्यैर्मनो येन विलीयते।
तत्क्षणं दृश्यते शुद्धं चिच्चत्मकारलक्षणम् ॥ १० ॥

जो भी भव्य जीव सत्का (अपने निजात्मशुद्धस्वभावका) ध्यान करता है उसको उसी समय शुद्ध चित्चमत्कार लक्षणवाला आत्मा दिखाई देता है (अनुभूतिमें आता है) जिससे उसी समय मनका (याने संकल्पविकल्प, मोहरागद्वेषका) नाश होता है याने शुद्धोपयोग होता है।

देखो प्रवचनसार गाथा नं. १९१ का शीर्षक और गाथा—

'शुद्धनयात् शुद्धात्मलाभ एव इति अवधारयति'

शुद्धनयसे शुद्धात्माका लाभ होता ही है ऐसा निश्चित करते है।

णाहं होमि परेसिं ण मे परे संति णाणमहमेक्को।
इदि जो झायदि झाणे सो अप्पाणं हवदि झादा ॥ १९१ ॥

अर्थ— मैं परका नहीं हूँ, पर मेरे नहीं है, मैं एक ज्ञान हूँ, इस प्रकार (पारिणामिकभावका) जो ध्यान करता है वह आत्मा ध्यानकालमें आत्माका (अनुभव करनेवाला) ध्याता होता है।

श्री कुंदकुंदाचार्यजी नियमसारमें लिखते है— गाथा नं. ९६

केवलणाणसहावो केवलदंसणसहावसुहमइओ।
केवलसत्तिसहाओ सोहं इदि चिंतए णाणी ॥ ९६ ॥

अर्थ— केवलज्ञानस्वभावी, केवलदर्शनस्वभावी, सुखमय और केवलशक्ति-स्वभावी वह मैं हूँ ऐसा ज्ञानी, चिंतवन करते है।

इसलिये अव्रती गृहस्थी भी इस प्रकार पारिणामिकभावका चिंतवन करता है। इस प्रकारसे चिंतवन करनेमें कुछ बाधा नहीं है।

देखो नियमसार गाथा नं. १८ की टीकामें कलश नं. ३४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असति सति विभावे तस्य चिंतास्ति नो नः
सततमनुभवामः शुद्धमात्मानमेकम् ।
हृदयकमलसंस्थं सर्वकर्मप्रमुक्तं
न खलु न खलु मुक्तिर्नान्यथास्त्यस्ति तस्मात् ॥ ३४ ॥

अर्थ– हमारे आत्मस्वभावमें (पारिणामिक भावमें) विभाव असत् होनेसे उसकी हमें चिन्ता नहीं है; हम तो हृदयकमलमें स्थित सर्वकर्मसे विमुक्त शुद्ध आत्माका (अपने निजशुद्धपारिणामिकभावका) एकका सतत अनुभव करते है, क्योंकि, अन्य किसी प्रकारसे मुक्ति नहीं है, नहीं है । इससे सिद्ध होता है कि, अव्रती गृहस्थ पारिणामिकभावका अनुभव करके सम्यक्त्व प्राप्त करता है और मोक्षमार्गस्थ होता है ।

नियमसार कलश २५, २६

इति परगुणपर्यायेषु सत्सूत्तमानां
हृदयसरसिजाते राजते कारणात्मा ।
सपदि समयसारं तं परं ब्रह्मरूपं
भज भजसि निजोत्थं भव्यशार्दूल स त्वम् ॥ २५ ॥

अर्थ– इस प्रकार परगुणपर्यायोंमें होनेपर भी, उत्तम पुरुषोंके हृदयकमलमें कारणात्मा (निजपारिणामिकभाव) विराजमान है । अपनेसे उत्पन्न ऐसे उस परमब्रह्मरूप समयसारको– कि जिसे तू भज रहा उसे हे भव्य शार्दूल, तू शीघ्र भज, तू वह है ।

क्वचिल्लसति सद्गुणैः क्वचिदशुद्धरूपैर्गुणैः
क्वचित्सहजपर्ययैः क्वचिदशुद्धपर्यायकैः ।
सनाथमपि जीवतत्त्वमनाथं समस्तैरिदं
नमामि परिभावयामि सकलार्थसिद्ध्यै सदा ॥ २६ ॥

अर्थ– जीवतत्त्व क्वचित् सद्गुणोंसहित विलसता (आविर्भूत) होता है– दिखाई देता है, क्वचित् अशुद्धरूपगुणोंसहित विलसता है । क्वचित् सहजपर्यायों सहित विलसता हैं और क्वचित् अशुद्धपर्यायों सहित विलसता है । इन सबसे सहित होनेपर भी जो इन सबसे विभक्त है ऐसे इस जीवतत्त्वको (पारिणामिकभावको) मैं सकल अर्थकी सिद्धिके लिये सदा नमता हूँ, भाता हूँ ।

देखो नियमसार कलश ५८–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंचितपंचमगतये पंचमभावं स्मरन्ति विद्वान्सः ।
संचितपंचाचाराः किंचनभावप्रपंचपरिहीणाः ॥ ५८ ॥

अर्थ– (ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्यरूप) पांच आचारोंसे युक्त और किंचन परिग्रहरूप भावके प्रपंचसे सर्वथा रहित ऐसे विद्वान पूजनीय पंचमगतिको प्राप्त करनेके लिये पंचमभावका (निजपारिणामिक भावका) स्मरण करते है ।

तो अव्रती गृहस्थी जीव भी अपने निजपारिणामिक भावका चिंतवन करते है।

२३ शंका– शुद्धनयके और व्यवहारनयके पक्षपातसे रहित समयसार होता है, ऐसा समयसार गाथा नं. १४२ में कहा है तो अव्रती गृहस्थ वस्तुस्वरूपको जानकर शुद्धनयका चिंतवन करेगा तो शुद्धनयका पक्षपात रहता नहीं क्या ?

उत्तर– १) यहाँ व्यवहारनयका पक्ष (विकल्प) भी छोडना है और व्यवहारनयके विषयभूत अर्थको भी छोडना है । २) निश्चयनयका पक्ष (विकल्प) मात्र छोडना हैं लेकिन ३) निश्चयनयके विषयभूत अर्थको ग्रहण करना है । यह कैसे कहोगे, तो देखिये जैनेंद्र सिद्धान्त कोश भाग–२, पृष्ठ ५६५

"यथा सम्यग्व्यवहारेण मिथ्याव्यवहारी निवर्तते तथा निश्चयेन व्यवहारविकल्पोऽपि निवर्तते । यथा निश्चयेन व्यवहारविकल्पोऽपि निवर्तते तथा स्वपर्यवसित भावनैकविकल्पोऽपि निवर्तते । एवं हि जीवस्य योऽसौ स्वपर्यवसितस्वभाव स एव नयपक्षातीतः ।"

जिस प्रकार सम्यक् व्यवहारसे मिथ्याव्यवहारकी निवृत्ति होती है; उसी प्रकार निश्चयनयसे व्यवहारके विकल्पोंकी भी निवृत्ति हो जाती है । जिस प्रकार निश्चयनयसे व्यवहारके विकल्पोंकी निवृत्ति होती है; उसी प्रकार स्वपर्यवसितभावसे एकत्वका विकल्प (निश्चयनयसे 'आत्मा एक है, शुद्ध है' ऐसा विकल्प) भी निवृत्त हो जाता है । इस प्रकार जीवका स्वपर्यवसित (अनुभवगम्य) स्वभाव ही नयपक्षातीत हैं ।

श्री देवसेनाचार्यजी नयचक्रमें लिखते है कि,

"निश्चयनयस्त्वेकत्वे समुपनीय, ज्ञानचैतन्ये संस्थाप्य परमानंदं समुत्पाद्य वीतरागं कृत्वा स्वयं निवर्तमानो नयपक्षातिक्रांतं करोति तमिति पूज्यतमः ।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निश्चयनय एकत्वमें समुपनीय (ले जाकर) ज्ञानचैतन्यमें संस्थापित करके परमानंदको समुपाद्य (प्राप्त करके), वीतराग करके स्वयं (स्वतः) निवृत्त हो जाता है। इस प्रकार वह नयपक्षातिक्रांतको करता है (इस प्रकार जीवको नयपक्षसे अतीत कर देता है।) इसलिये निश्चयनय पूज्यतम है।

इसलिये यह सिद्ध हुआ की जो जीव बुद्धिपूर्वक निश्चयनय का आश्रय करता (चिंतवन करता) है वह पक्षातिक्रांत (विकल्पातीत) होता है। इसके पहले भी अनेकवार यह सिद्ध किया है वह पीछेके पृष्ठोंपरसे देख लेना।

श्री अमृतचंद्राचार्यजी समयसार कलश नं. १२२ में कहते हैं।

" इदमेवात्र तात्पर्यं हेयः शुद्धनयो न हि।
नास्ति बंधस्तदत्यागात् तत्त्यागाद्बंध एव हि ॥ १२२ ॥ "

अर्थ- यहाँ यही तात्पर्य है कि शुद्धनय त्यागने योग्य नहीं हैं, क्योंकि, शुद्धनय (निश्चयनय) के अत्यागसे (निश्चयनयका त्याग न करनेसे) बंध नहीं होता और शुद्धनयका (निश्चयनयका) त्याग करनेसे बंध होता है।

श्री समयसार गाथा- १७३ से १७६ तक

' सव्वे पुव्वणिबद्धा दु पच्चया संति सम्मदिठ्ठिस्स '

इत्यादि पांच गाथाओंकी टीकामें श्री जयसेनाचार्यजी लिखते है कि-

' एतेन कारणेन सम्यग्दृष्टिरबंधको भणित इति। किं च विस्तरः मिथ्यादृष्टयपेक्षया चतुर्थगुणस्थाने सरागसम्यग्दृष्टिः त्रिचत्वारिंशत्-प्रकृतीनां अबंधकः। सप्ताधिकसप्तति प्रकृतीनां अल्पस्थित्यनुभागरूपाणां बंधकोऽपि संसारस्थितिच्छेदं करोति। '

अर्थ- इस कारणसे सम्यग्दृष्टि (चतुर्थादि गुणस्थानवाले) जीव अबंधक कहे गये है।

इसका विशेष कथन यह है कि,

चतुर्थगुणस्थानवाले जीव अबंधक है, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि की अपेक्षासे चतुर्थ गुणस्थानमें अव्रत सम्यग्दृष्टि ४३ प्रकृतिओंका अबंधक है। ७७ प्रकृतिओंकी अल्प स्थिति, अनुभागका बंधक है तो भी संसारस्थितिच्छेद करता है इसलिये अबंधक है।

उसी टीकामे आगे लिखते है कि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगमभाषा (व्यवहार)	अध्यात्मभाषा (निश्चय)
१) तत्र द्वादशांगश्रुतविषये अवगमो ज्ञानं व्यवहारेण बहिर्विषयः ।	**१) निश्चयेन तु वीतरागस्वसंवेदनलक्षणं चेति ।**
वहाँ द्वादशांगश्रुतविषय का अवगम ज्ञान व्यवहारनयसे बहिर्विषयका ज्ञान है (याने जीवादि द्रव्य, तत्त्व, पदार्थं इत्यादिका ज्ञान, अवगम है ।	निश्चयनयसे वीतरागस्वसंवेदनलक्षणवाला ज्ञान (याने अपने निजशुद्धात्म स्वभावकी-पारिणामिकभावकी अनुभूतिवाला ज्ञान) अवगम है ।
२) भक्तिः पुनः सम्यक्त्वं भण्यते व्यवहारेण सरागसम्यग्दृष्टीनां पंचपरमेष्ठ्याराधनारूपा ।	**२) निश्चयेन वीतरागसम्यग्दृष्टीनां शुद्धात्मतत्त्वभावनारूपा चेति ।**
भक्तीको सम्यक्त्व कहते है । पंचपरमेष्ठिकी आराधना करना भक्ति है याने सम्यक्त्व है यह चतुर्थादि गुणस्थानमें होनेवाली श्रद्धा व्यवहारनयसे सम्यक्त्व है ।	(भक्तिको सम्यक्त्व कहते है उसीको अध्यात्मभाषासे) चतुर्थादि गुणस्थानमें वीतराग सम्यक्त्व (स्वानुभूति–निश्चयसम्यक्त्व) वाले स्वशुद्धात्मस्वभावकी भावना (अपने पारिणामिक-भावकी अनुभूति) कहते है वह सम्यक्त्व है ।

समयसार गाथा नं. १७७, १७८

‘ रागो दोसो मोहो य आसवा णत्थि सम्मदिट्ठिस्स ॥ ’ इत्यादि

की टीकमें श्री जयसेनाचार्यजी लिखते है–

रागद्वेषमोहाः सम्यग्दृष्टेर्न भवन्ति, सम्यग्दृष्टित्वान्यथानुपपत्तेरिति हेतुः । तथाहि, अनंतानुबंधिक्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वोदयजनिता रागद्वेषमोहाः सम्यग्दृष्टेर्न सन्तीति पक्षः । कस्मात्? इति चेत् केवलज्ञानाद्यनंतगुणसहितपरमात्मोपादेयत्वे सति वीतरागसर्वज्ञप्रणीतषद्द्रव्यपंचास्तिकायसप्ततत्त्वनवपदार्थरूपस्य मूढत्रयादिपंचविंशति – दोषरहितस्य “संवेओ णिव्वेओ णिंदा गरुहा य उवसमो भत्ती । वच्छलं अणुकंपा गुणट्ठ सम्मत्तस्स ॥” इति गाथाकथितलक्षणस्य चतुर्थगुणस्थानवर्तिसरागसम्यक्त्वस्य अन्यथानुपपत्तेरिति हेतुः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ– चतुर्थादि गुणस्थानवाले सम्यग्दृष्टि जीवको रागद्वेषमोह नहीं होते है, क्योंकि, रागद्वेषमोह भावोंके होनेपर सम्यग्दृष्टिपना प्राप्त नहीं होता।

इसको स्पष्ट कर बतला रहे है– चतुर्थगुणस्थानवाले सम्यग्दृष्टिजीवके अनंतानुबंधी क्रोधमानमायालोभ और मिथ्यात्वके उदयमें होनेवाले रागद्वेषमोहभाव नहीं होते (यह पक्ष हैं), क्योंकि–

अध्यात्मभाषासे	आगमभाषासे
केवलज्ञानादि अनंतगुणोंसहित स्व–स्वभावमय परमात्माको (याने अपने निजशुद्धात्मपारिणामिक भावको) उपादेय करके स्वानुभवसहित ही चतुर्थगुणस्थान-वालेका सम्यक्त्व है। स्वानुभूतिसे (शुद्धोपयोगसे) रहित चतुर्थगुणस्थान-वालेका सम्यक्त्व रहता नहीं। यह कारण है,	वीतरागसर्वज्ञ, सहा द्रव्य, पांच अस्तिकाय, साततत्त्व, नवपदार्थ की रूचिरूप और मूढत्रयादिपच्चीस दोष-रहित और संवेग, निर्वेद, निंदा, गर्हा उपशम, भक्ति, वात्सल्य और अनुकंपा इन आठ गुणों सहित ही चतुर्थगुण-स्थानवालेका सम्यक्त्व है। इनसे रहित चतुर्थगुणस्थानवालेका सम्यक्त्व नहीं रहता। यह कारण है।

इससे अच्छी तरह सिद्ध होता है कि, स्वानुभूतिसे ही चतुर्थगुणस्थान (अव्रतीसम्यक्त्वगुणस्थान) प्रगट होता है। अन्यथा अनुपपत्ति है।

● जो वाह्यतः सर्वज्ञ कथित ६ द्रव्य, ५ अस्तिकाय, ७ तत्त्व इत्यादिको ही सम्यक्त्व मानते है और स्वानुभूतिको नकार देते है वे मिथ्यात्वी (प्रथम-गुणस्थानवर्ती) है।

२४ शंका– मो. पा. टी. २ / ३०५

ये गृहस्थाअपि सन्तो मनाग् आत्मभावनां आसाद्य वयं ध्यानिन इति ब्रुवते ते जिनधर्मविराधका मिथ्यादृष्टयः ज्ञातव्याः।

इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर– जो गृहस्थ होते हुअे भी जघन्य आत्मभावना (स्वात्मानुभूति) प्राप्त करके अपने को 'हम सप्तमादि गुणस्थानवर्ती ध्यानी है' ऐसा कहते है वे जिनधर्मविराधक मिथ्यादृष्टि है ऐसा जानो।

● टीप– नियमसार गाथा नं. १४५, १४४
समयसार गाथा नं. २७४, २७५, १५२, १५३.
प्रवचनसार गाथा नं. ७९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इससे जो अव्रती गृहस्थमें जघन्य आत्मभावना (स्वात्मानुभूति) मानते हैं और अन्योंकी याने देशव्रती सम्यक्त्वी की मध्यम स्वात्मानुभूति और भावलिंगी संयमीकी सप्तमादि गुणस्थानक्रमसे उत्कृष्ट, उत्कृष्टतर, उत्कृष्टतम स्वात्मानुभूति मानते है, वे मिथ्यात्वी नहीं है– (याने वे अव्रती गृहस्थ भी निश्चयसम्यक्त्वी है) । याने जाति अपेक्षासे चतुर्थादिगुणस्थानवर्तियोंकी स्वानुभूति समान है ।

२५ शंका– मो. पा. टी. २ / ३०५ / ९ (भावसंग्रह–देवसेनसूरिकृत–३७१–३९७–६०५)

"मुनिनामेव परमात्मध्यानं घटते । तप्तलोहगोलकसमानगृहिणां परमात्मध्यानं न संगच्छते ॥"

इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर– मुनियोंके ही परम (उत्कृष्ट–सप्तमादिगुणस्थवर्तीयोंका उत्कृष्ट–उत्कृष्टतर–उत्कृष्टतम) आत्मध्यान (स्वात्मानुभव) होता है । तप्तलोहके गोलेके समान गृहस्थोंको परम (उत्कृष्ट सप्तमादि गुणस्थानवर्तियोंका उत्कृष्ट-उत्कृष्टतर-उत्कृष्टतम) आत्मध्यान (स्वानुभव) होता नहीं ।

इससे जो अव्रती गृहस्थको पारिणामिकभावरूप अपने आत्माका ध्यान (जघन्य स्वात्मानुभव) होता है, इसमें बाधा आती नहीं ।

२६ शंका– भा. पा. टी. ८१ / २३२ / २४

क्षोभः परीषहोपसर्गनिपाते चित्तस्य चलनता ताभ्यां विहीनो रहितः मोहक्षोभविहीनः । एवं गुणविशिष्ट–आत्मनः शुद्धबुद्धैकस्वभावस्य चिच्चमत्कारलक्षणश्चिदानन्दरूपः परिणामो इत्युच्यते । स परिणामो गृहस्थानां न भवति । पञ्चसूनासहितत्वात् ।

इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर– परिषह और उपसर्गके आनेपर चित्तका चलना क्षोभ है । उससे रहित मोहक्षोभ विहीन है । ऐसे गुणोंसे विशिष्ट शुद्धबुद्ध एकस्वभावी आत्माका चिच्चमत्कारलक्षण चिदानन्द परिणाम धर्म कहलाता हे पंचसूना-दोष सहित होनेके कारण वह परिणाम (उत्कृष्ट परिणाम) गृहस्थोंको नहीं होता ।

इसमे यह दिखाया है कि, उत्कृष्ट धर्मध्यान (सकलसंयमीका धर्मध्यान) और शुक्लध्यान, अव्रती गृहस्थ को होता नहीं; लेकिन जघन्य धर्मध्यान (अपने निजात्मस्वभावका चिंतवन–स्वानुभव) अव्रती गृहस्थको होता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखो बृहद्द्रव्यसंग्रह गाथा नं. ३४ की टीका (अथवा प्रवचनसार गाथा नं. १८१ की टीका–तात्पर्यवृत्ति)

"तत्राशुद्धनिश्चये शुद्धोपयोग कथं घटते इति चेत् तत्र उत्तरम्– शुद्धोपयोगे शुद्धबुद्धैकस्वभावो निजात्माध्येयस्तिष्ठति तेन कारणेन शुद्धध्येयत्वात् शुद्धावलम्बनत्वात्, शुद्धात्मस्वरूपसाधकत्वात् च शुद्धोपयोगो घटते। स च संवरशब्दवाच्यः शुद्धोपयोगः संसारकारणभूतमिथ्यात्व–रागाद्यशुद्धपर्यायवदशुद्धो न भवति, फलभूतकेवलज्ञानपर्यायवत् शुद्धोऽपि न भवति किंतु ताभ्यामशुद्धशुद्धपर्यायाभ्यां विलक्षणं एकदेशनिरावरणं च तृतीयमवस्थान्तरं भण्यते।"

अर्थ– प्रश्न–अशुद्ध निश्चयमें शुद्धोपयोग कैसे घटित होता है?

उसका उत्तर देते है कि–

शुद्धोपयोगमें शुद्धबुद्ध एक स्वभाव निजात्मा ध्येय (ध्यान करने योग्य विषय) है। इस कारणसे ध्यानका विषय शुद्ध होनेसे, शुद्ध अवलम्बन होनेसे और शुद्धात्मस्वरूपका साधक होनेसे शुद्धोपयोग सिद्ध होता है। संवरशब्दका वाच्य (संवर शब्दके द्वारा कहा जानेवाला) वह शुद्धोपयोग है। वह शुद्धोपयोग मिथ्यात्वरागादि अशुद्धपर्यायके समान अशुद्ध नहीं होता और केवलज्ञानपर्यायके समान पूर्ण शुद्ध नहीं होता है। किन्तु अशुद्धपर्याय (मिथ्यात्वसासादानमिश्रगुणस्थानवर्ती अशुद्धपर्याय) और पूर्ण शुद्धपर्याय (अर्हंत पर्याय अथवा सिद्धपर्याय) इन दो पर्यायोंसें विलक्षण (भिन्न) एकदेश निरावरण तृतीय अवस्थान्तर कही जाती है।

इसलिये अव्रती सम्यक्त्वीमें और देशविरतसम्यक्त्वीमें और धर्मध्यानवाले भावलिंगी सकलसंयमी में भी शुद्धोपयोग है। उस शुद्धोपयोगसे (शुद्धात्मानुभूतिसे) प्रथमोपशम सम्यक्त्व अव्रती गृहस्थमें प्रगट होता है। देखो पृष्ठ नं. ५

याने जाति अपेक्षासे अव्रती सम्यक्त्वी में, देशविरतसम्यक्त्वीमें और भावलिंगी–सकलसंयमीमें शुद्धात्मानुभव (शुद्धोपयोग) समान है। और मिथ्यात्वसासादान मिश्रगुणस्थानोंमें अशुद्धोपयोग है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोष्टक

	आगमभाषा		अध्यात्मभाषा	फल	
क	द्रव्य	पर्याय	शुद्धात्मानुभूतिके लिये आश्रय करने योग्य 'स्वद्रव्य' सकलादेशी	समीचीन	सम्यक्त्वी
ख	द्रव्य	पर्याय	शुद्धात्मानुभूतिके लिये आश्रय करने योग्य 'पर्याय अथवा अन्यद्रव्य'	असमीचीन अथवा (व्यवहाराभासी)	मिथ्यात्वी
ग	द्रव्य	०	शुद्धात्मानुभूतिके लिये आश्रय करके योग्य 'द्रव्य'	निश्चयाभासी	मिथ्यात्वी
घ	०	पर्याय	शुद्धात्मानुभूतिके लिये आश्रय करने योग्य 'पर्याय'	व्यवहाराभासी	मिथ्यात्वी
च	द्रव्य	पर्याय	शुद्धात्मानुभूतिके लिये आश्रय निरपेक्ष 'स्वद्रव्य और पर्याय'	असमीचीन (उभयाभासी)	मिथ्यात्वी
छ	०	०	शुद्धात्मानुभूतिके लिये आश्रय करने योग्य 'द्रव्य'	असमीचीन (अंधश्रद्धा)	मिथ्यात्वी
ज	०	०	शुद्धात्मानुभुतिके लिये आश्रय करने योग्य 'पर्याय'	असमीचीन	मिथ्यात्वी
झ	द्रव्य	पर्याय	शुद्धात्मानुभूतिके लिये आश्रय करने योग्य 'स्वद्रव्य' विकलादेशी	असमीचीन	मिथ्यात्वी
ट	पर्याय निरपेक्ष द्रव्य	द्रव्य निरपेक्ष पर्याय	शुद्धात्मानुभूतिके लिये आश्रय करने योग्य 'स्वद्रव्य'	असमीचीन	मिथ्यात्वी
ठ	पर्याय निरपेक्ष द्रव्य	द्रव्य निरपेक्ष पर्याय	शुद्धात्मानुभूतिके लिये आश्रय करने योग्य 'पर्याय अथवा अन्य द्रव्य'	असमीचीन	मिथ्यात्वी
ड	पर्याय निरपेक्ष द्रव्य	द्रव्य निरपेक्ष पर्याय	शुद्धात्मानुभूतिके लिये आश्रय निरपेक्ष 'स्वद्रव्य और पर्याय'	असमीचीन	मिथ्यात्वी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संक्षेपमें कोष्टकका स्पष्टीकरण–

क) परस्परसापेक्ष द्रव्यपर्यायात्मक जीवादि पदार्थ हैं ऐसा आगमभाषासे जानकर अध्यात्मभाषासे शुद्धात्मानुभूतिके लिये स्वद्रव्यका सकलादेशी दृष्टिसे आश्रय करता है वह समीचीन जानता है और शुद्धात्मानुभूति होनेसे वह सम्यक्त्वी होता है। इसके लिये आधार संपूर्ण जिनवाणी है, उदा. कुछ आधार– समयसार गाथा १३, १४, १५ और ११, और उनकी आत्मख्याति संस्कृत टीका.

ख) परस्परसापेक्ष द्रव्यपर्यायात्मक जीवादि पदार्थ है ऐसा आगमभाषासे जानकर अध्यात्मभाषासे शुद्धात्मानुभूतिके लिये अपनी खुदकी अशुद्धपर्याय अथवा भाविकालीन शुद्धपर्याय अथवा अन्यद्रव्य (याने पंचपरमेष्ठी इत्यादिका) आश्रय करता है वह असमीचीन जानता है, परसमयमें रत है इसलिये मिथ्यात्वी है। उदाहरणके लिये कुछ आधार– प्रवचनसार गाथा नं. ७९, पंचास्तिकाय संग्रह गाथा नं. १६६, नियमसार गाथा नं. १४४ इत्यादि.

ग) जीवादिपदार्थको सर्वथा द्रव्यमय और पर्यायरहित मानता है और अध्यात्मभाषासे शुद्धात्मानुभूतिके लिये द्रव्यका आश्रय करता है। यहाँ क्रमांक 'क' के समान द्रव्यका चिंतवन करता है तो भी आगमभाषाका यथोचित ज्ञान नहीं है इसलिये निश्चयाभासी है, मिथ्यात्वी है। उदाहरणके लिये आधार– अष्टसहस्री पृष्ठ २७–

" निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत् शशविषाणवत् "।

घ) जीवादिपदार्थको आगमभाषासे द्रव्यरहित और सर्वथा पर्यायमय मानता है और अध्यात्मभाषासे शुद्धात्मानुभूतिके लिये पर्यायका आश्रय करता है वह जीव व्यवहाराभासी है। मिथ्यात्वी है। उदाहरणके लिये आधार–अष्टसहस्री पृष्ठ नं. २७

" निर्विशेषं हि सामान्यं भवेच्छशविषाणवत् ।
सामान्यरहितत्वाच्च विशेषस्तद्वदेव हि ॥ "

च) परस्परसापेक्ष द्रव्यपर्यायात्मक जीवादिपदार्थ हैं ऐसा आगमभाषासे जानकर अध्यात्मभाषासे शुद्धात्मानुभूतिके लिये 'स्वद्रव्य दोनों पर्यायका' आश्रय करता है वह उभयाभासी है, मिथ्यात्वी है। उदाहरणके लिये आधार समयसार गाथा नं. १४ उसकी आत्मख्याति टीका, नियमसार गाथा नं. १०२, सामायिक पाठश्लोक १३,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आ. अमितगतिविरचित सामायिक पाठ श्लोक नं. २६. इत्यादिमें शाश्वत, नियत ऐसा कहा है और समयसार गाथा नं. १५ की आत्मख्यातिमें कहा है कि, सामान्य आविर्भावके समय उसमें विशेषका तिरोभाव है उसकी ज्ञानीको रुचि होती है। जो स्वानुभूतिके लिये द्रव्य और पर्यायका आश्रय करता है याने निश्चय और व्यवहारका आश्रय हो जानेसे वह द्वैतमेंही (विशेषमेंही) आ जाता है इसलिये मिथ्यात्व है।

छ) जो जीव आगमभाषासे जीवादिपदार्थोंकी जानकारी प्राप्त न करके अध्यात्मभाषासे स्वद्रव्यका सकलादेशी चिंतवन करने योग्य है ऐसा मानता है वह असमीचीन है। वह मिथ्यात्वी हैं।

इसके लिए आधार– जयधवला, भाग–१ पृष्ठ ६

“ जुत्तिविरहियगुरूवयणादो पयट्टमाणस्स पमाणाणुसारित्तविरोहादो ”।

अर्थ– जो शिष्य युक्तिकी अपेक्षा किए बिना मात्र गुरूवचनके अनुसार प्रवृत्ति करता है, वह प्रमाणानुसारी माननेमें विरोध आता है।

ज) जो जीव आगमभाषासे जीवादिपदार्थोंकी जानकारी प्राप्त न करके अध्यात्मभाषासे शुद्धात्मानुभूतिके लिये ‘ पर्याय ’ आश्रय करने योग्य है ऐसा मानता है वह असमीचीन है, मिथ्यात्वी है

झ) परस्परसापेक्ष द्रव्यपर्यायात्मक जीवादि पदार्थ है ऐसा आगमभाषासे जानकर अध्यात्मभाषासे शुद्धात्मानुभूतिके लिये स्वद्रव्यका विकलादेशी दृष्टिसे आश्रय करता है, वह असमीचीन है। मिथ्यात्वी है। समयसार गाथा नं. ३२० (आत्मख्याति) की तात्पर्यवृत्तिमें श्री जयसेनाचार्यजी लिखते है......

“ ध्याता पुरुषः यदेव सकलनिरावरणं अखंडैकप्रतिभासमयं अविनश्वरं शुद्धपारिणामिकपरमभावलक्षणं निजपरमात्मद्रव्यं तदेव अहं इति भावयति, न खंडज्ञानरूपं इति भावार्थः। ”

ट) परस्पर निरपेक्ष द्रव्यपर्यायात्मक जीवादिपदार्थ है ऐसा आगमभाषासे जानकर अध्यात्मभाषासे शुद्धात्मानुभूतिके लिये आश्रय करने योग्य ‘ स्वद्रव्य ’ है ऐसी मान्यता असमीचीन है, वह जीव मिथ्यात्वी है। इसकी आगम भाषामें गलत मान्यता है, क्योंकि, आप्तमीमांसामें–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

" मिथ्यासमूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यैकान्ततास्ति नः ।
निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत् ॥ १०८ ॥ '

ठ) परस्पर निरपेक्ष द्रव्यपर्यायात्मक जीवादि पदार्थ है ऐसा आगमभाषासे जानकर अध्यात्मभाषासे शुद्धात्मानुभूतिके लिये आश्रय करने योग्य ' पर्याय अथवा अन्य द्रव्य ' है ऐसी मान्यता असमीचीन है । वह जीव मिथ्यात्वी है । इसके लिये आधार आप्तमीमांसा श्लोक नं. १०८ और उसकी अष्टसहस्री संस्कृत टीका और समयसार गाथा नं. ११ ।

ड) परस्पर निरपेक्ष द्रव्यपर्यायात्मक जीवादि पदार्थ है ऐसा आगमभाषासे जानकर अध्यात्मभाषासे शुद्धात्मानुभूतिके लिये आश्रय करने योग्य ' स्वद्रव्य दोनो पर्याय ' है ऐसी मान्यता असमीचीन है । वह जीव मिथ्यात्वी है । इसके लिये आधार-आप्तमीमांसा श्लोक नं. १०८, समयसार गाथा नं. ११ ।

इससे सिद्ध होता है कि, क्रमांक नंबर 'क' ही समीचीन है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिशिष्ट

श्री क्षु. धर्मदास विरचित स्व जीवन वृत्तान्त

('स्वात्मानुभव मनन' की 'प्रस्तावना')

" मैंका सरीरकूं क्षुल्लक ब्रह्मचारी धर्मदास कहणेवाला कहता है सो ही मैं मेरी स्वात्मानुभवकी प्राप्त की प्राप्ती मई सो प्रगट कर्ता हूँ मैं के द्वारा मेरा सरीर का जनम तो सवाई जयपूरका राजमैं जीला सवाई माधोपूर तालुका बोलीगांव बपूई का है खंडेरवाल श्रावग गोत्र गिरधरवाल चुडीवाल तथा गधिया का कूल मैं मेरी सरीर उपज्यो है मेरा सरीर का पिता का नाम श्रीलालजी थो अर मेरी माता को नाम ज्वालाबाई थो अर मेरा सरीर को नाम धंनालाल थो अब मेरा सरीर को नाम क्षुल्लक ब्रह्मचारी धर्मदास है अनुक्रमसे मेरे सरीरके वय २० वर्षकी हुई तब कारण पायकरिके मैं झालरा पाटण आयों तहां जैनका मुनी नगनश्री सिद्धश्रेणिजी ताको मैं शिष्य हुवो स्वामी मैंकूं लौकीक वर्त नेम दीया सो ही मैं संवत् १९२२ औगणीसे बाईसका संवत्सैं १९३५ का साल पर्यंत कायक्लेस तप किया

भावार्थ १३ (तेरा) वर्ष कै भीतर मैं २००० दोय सहस्र तो निर्जल उपवास किया. दो च्यार जैन मंदिर बणाया. प्रतिष्ठा कराई बहुरि समेदशिखर गिरनार आदि जैनका तीर्थ कीया. और बी मूसयन पटन पाठ मंत्रादिक बहुत कीया. ताकरि कै मेरा अंतःकरण मैं अभिमान अहंकाररुपी सर्प का जहर व्याप्त हो गया था तिस कारणतै मैं मेरे कू भला मानतो थो अन्यकूं झूठा, षोटा (खोटा), बुरा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानतो थो उसी बहिरात्मादिसा मै मैंकूं तेरापंथी श्रावग दिल्ली अलीगढ कोयल आदि बडे सहरों में मेरा पांव मैं प्रणम्य नमस्कार पूजा करते थे इस कारणसैं बी मेरा अंतःकरणमैं अभिमान अज्ञान ऐसा था के मै भला हूं श्रेष्ठ हूं अर्थात् उस समय येह मोकू निश्चय नही थी के निंदा स्तुति पूजा देहकी अर नामकी है बहुरि मैं भ्रमण करतो बराड देसेमें अमरावती सहर है वहां गया थो तहां चातुर्मास में रह्यो थो तहां श्रावगमंडलीकूं उपदेस राग द्वेष का देतो थो अमुकां भला है अमुकां षोटा (खोटा) हैं इत्यादिक उपदेस समयकूं जलालसंगी मैंकू कही के आप किसकूं भला बुरा कहते हो जाणते हो मानते हो सर्व वक्त आपणा अपणा स्वभावकूं लीया हुवा स्वभावमैं जैसी है तैसी ही है प्रथम आप अपेणकूं समजो इस प्रमाण कूं जलालसंगी मैं कू कही तो बी मेरी मेरे भीतर स्वानुभव अंतरात्मद्रष्टी न भई. कारण पायकरि कैं सहर करंजाके पटाधीश श्रीमत् देवेंद्रकीर्तिजी भट्टारकमहाराज सें मैं मिल्यो. महाराजका सरीरकी वयवृद्धि ९५ पच्याणैव वर्षकी स्वामी मैसैं कही तुमकूं सिद्ध पूजापाठ आता है के नहीं आता है तब मैं कही मैंकूं आता है तब स्वामी बोले के जयमाला को अंतको श्लोक पढो तब मैं अंत्तको श्लोक–

विवर्णं विगंब विमान विलोम
विमाय विकाय विशब्द विसोक (शोक)
अनाकुल केवल सर्व विमोह
प्रसिद्ध विशुद्ध सुसिद्ध समूह ॥ १ ॥

तब श्रीगुरु मैंकूं कही के स्वयंसिद्ध परमात्मातो कालो पीलो लाल ह्र्यो सुपेदादिक वर्ण रहित है सुगंध दुर्गंध रहित है क्रोध मान माया लोभ रहित है पंच प्रकार सरीर रहित है तथा छकाया रहित है शब्द द्वारा भाष होता है सर्व आकूलता रहित है सर्व ठिकाणे विशुद्ध प्रसिद्ध प्रगट है देखो देखो तुमकूं वो परमात्मा दीखता है के नहीं दीखता है तब मैं स्वामीका श्रीमुखसैं श्रवण करिकैं चकितचित्त हो गयो स्वामी तो मैके नगीचसैं उठकरि भीतर जैन मंदिर मैं चले गये अर मैं मेरा मन में बहुत बिचार कीया वो प्रसिद्ध सिद्ध परमात्मा मैंकू कोई ठिकाणे कोई द्रव क्षेत्र काल भव भाव मैं दीख्या नहीं मै विचार कीया के कालो पीलो लाल हरयो घोलो काया माया छायोसें अलग है तो वी प्रसिद्ध सिद्ध प्रगट है अर मैं तो जिधर देखता हूं उधर वर्ण रंग कायादिक ही दीखता है वो प्रसिद्ध सिद्ध प्रगट है तो मै कूं क्यूं नही दीषता–इत्यादि विचार बहुत कीया बाद पश्चात् स्वामीसैं मैंकू ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे कृपानाथ वो प्रसिद्ध सिद्ध प्रगट है सो तो मैं कूं दीखता है नहीं तब स्वामी बोले ज्यो अंधा होता है उसकूं नही दीखता है मै फेर स्वामीसैं प्रश्न नही कीयो चुपचाप रह्यो परंतु जैसे स्वान के मस्तगमैं कीट पड जावै तैसे मै का मस्तगमैं भ्रांति सी पड गई उस भ्रांति चुकत मैं ज्येष्ठ महिनोमें समेद सिखर गयो तहां बी पहाड के उपर नीचै बनमैं उस प्रसिद्ध सिद्ध परमात्माकूं देखणे लग्यो तीन दिवस पर्यंत देख्यो परंतु वहाँ बी वो प्रसिद्ध सिद्ध दीख्यो नहीं बहुरि पीछो पलट करिकै १० (दस) महिना पश्चात् देवेंद्रकीर्ति स्वामी के समीप आयो. स्वामी सैं वीनती करी हे प्रभु वो प्रसिद्ध सिद्ध परमात्मा प्रगट है तो मैं कूं दीखतो नहीं आप कृपा करिकै दीखावो तब स्वामी बोले सर्वकूं देखता है ताकू देख तू ही है ऐसे स्वामी मैका कर्ण में कही तत् समय मेरी मेरे भीतर अंतरात्म अंतरद्रष्टी हो गई सो ही मै इस ग्रंथ में प्रगटपणे कही है जैसे जैसो पीवै पाणी तैसे तैसो बोले वाणी इसी दृष्टान्त द्वारा निश्चय समजणा. मेरा अतःकरणमैं साक्षात् परमात्मा जागती ज्योति अचल तिष्ठ गई उसी प्रमाणकी मैं वाणी इस पुस्तकमैं लिखी है अब कोई मुमुक्षकूं जन्म मरण के दुषसैं छूटणे की इच्छा होय तथा जागती ज्योति परब्रह्म परमात्माको साक्षात् स्वानुभव लेना होय सो मुमुक्ष विषय मोटा पाप अपराध सप्त विषयन छोडकरिकै इस पुस्तकके येकांत मैं बैठकरि कै मनको मनमैं मनन करो बांचो पढो " परमात्मा प्रकासादिक " ग्रंथसैंभी इसमैं स्वानुभव होणेकी सुगमता है खोटी करणी खोटा कर्म तो छोडणाजोग ही है परंतु इस ग्रंथकूं पटणेवाला मुमुक्षकूं कहता हूं के जैसे तुम खोट करणी खोटा कर्म छोट दिया तैसे सुभ भला कर्म भली करणी भी छोडकरिकै इस पुस्तककूं बांचणा येकांतमैं येह पुस्तक अपणो आपही के संबोधनै को है परकूं संबोधनको मुख्य नहीं कदाचित् कोई प्रकार है समज लेणा समजाणा विना समजसैं नही बोलणा. नही कहणा. जरूर इस ग्रंथके पढणेसैं मनन करेणसैं मुमुक्षुकूं स्वानुभव अतरदृष्टीं होवैगी संसार जगतमैं जिसकूं स्वात्मानुभव आत्मज्ञान नही वा ब्रह्मज्ञान नहीं उसका व्रत जप तप नेम तीर्थयात्रा दान पूजादिक है सो ब्रह्मज्ञानाग्नीनीविना सर्व कच्चा है जैसे रसोईमे आटा दाल चनादिक चावल बीजनादिक है परंतु अग्नीविना सर्व कच्चा है तैसेही आत्मज्ञानविना मुनीपण क्षुल्लकपण आदि सर्व कच्चा है वास्तै हे मुमुक्षुजन वो स्वात्मानुभवकी प्राप्त की प्राप्ती के अर्थ इस ग्रंथकूं अर एकांतमैं अपणे मनको मनमैं मनन करणा-पढणा बांचणा।"

5358

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निवेदन

इस पुस्तिकाका प्रकाशन करनेका विचार यहाँके युवक-युवति मंडळने किया है। और उसकी पूर्णता की है। यह युवक-युवति मंडळ पूज्य श्री. १०८ वीरसागर महाराजजी जब शोलापुरमें विराजमान थे, तब उनके पास समयसार, बृहद् द्रव्यसंग्रह, जैनेंद्र-व्याकरण आदि ग्रंथोंकी पढाई करता था। उनका यह कार्य प्रशंसनीय है।

* दातारोंकी सूची *

१)	श्री. रायचंद गौतमचंद चंकेश्वरा	४०१
२)	श्री. गुलाबचंद हिराचंद शहा, मैंदर्गीकर	२०१
३)	श्री. मनोहर शंकरराव मोहोळकर	२०१
४)	स्व. कु. चेतना राजकुमार आळंदकर	२०१
५)	सौ. इंदुमती चंद्रनाथ वनकुद्रे	२०१
६)	स्व. श्री. फुलुबाई माणिकचंद शहा, वाडीकर	१०१
७)	श्री. उज्वल जयकुमार मोहरे	१०१
८)	स्व. श्री. सुभाष हिराचंद शहा	१०१
९)	सौ. प्रमिला वसंतराव मोहिरे, बेळगांव	१०१
१०)	सौ. राजमति धनपाल कोल्हापूरे, बेळगांव	१०१
११)	श्री. जगन्नाथ बाळकृष्ण कंदले	५१
१२)	सौ. केशरबाई माणिकचंद शहा, करकमकर	५१
१३)	सौ. सुषमा दीपक मेहता	५१
१४)	सौ. कुमुदिनी निनगुरकर	५१
१५)	श्री. प्रदीप शांतिकुमार शहा	५१
१६)	गुप्तदान	२३२

निवेदक–

श्री. नरेंद्रकुमार शास्त्री

महामहिमोपाध्याय, सोलापूर

दि. २५-९-८१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi